अध्याय–१

विषय प्रवेश

1.1 संगीत का उद्‌भव एवं विकास

युगों से कला विश्व की चीर संगीनी रही है । कला द्वारा विभिन्न देशों के राजनैतिक, स्थानीय, प्रदेशवर्ती सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है । हर एक देश की कला ही उस देश की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है । विश्व में कलाओं को एक अमूल्य स्थान मिला है । विभिन्न प्रदेशों में कलाओं का अपना अलग–अलग अस्तित्व है । ये सभी कलाओं में संगीत कला सर्वश्रेष्ठ कला के रूप में पायी जाती है । वैश्विक संगीत की तुलना में भारत में संगीत का अपना एक अलग अस्तित्व प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक देखने को मिलता है ।

भारत में मानव सभ्यता के साथ–साथ कलाओं का विकास हुआ । चौंसठ कलाओं में कलाओं का वर्गीकरण किया गया है । यह सभी कलाओं में संगीत कला को सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है । मनुष्य ह्रदय में सुसुप्त अवस्था में रहने वाले भावों को जागृत करने का सामर्थ्य संगीत में है । संगीत ही एक ऐसी कला है जिसमे दृश्य और श्राव्य दोनों ही गुण विद्यमान है । संगीत कला के अन्तर्गत गायन वादन एवं नृत्य की गणना की जाती है । अभिनय, शब्द, स्वर, लय यह प्रमुख तत्व सिर्फ संगीत कला में सामूहिक रूप में प्रस्तुत किये जाते है । इसलिये संगीत को सर्वश्रेष्ठ मानकर महाराजा भरथरी ने कहा है ''साहित्य संगीत कला विहिनम साक्षात पशुः पूछ वैश हीनम्'' संगीत रत्नाकर के प्रथम स्वरगत अध्याय में कहा गया है कि,

तस्य गीतस्य महात्म्यं के प्रशंसितुमीशते

धमार्थकाम मोक्षाणामिदमे वैक साधनम् ॥३०॥[1]

अर्थात् इस जगत में गीत का महात्म्य का वर्णन कौन सक्षम है की जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का एक मात्र साधन है संगीत ।

1. चौधरी, सुभद्रा (अनुवादक) / संगीत रत्नाकर / पृ. 15

विषयोचित्त अध्ययन से शोधछात्रा को ज्ञात होता है कि संगीत प्रकृति की आत्मा है, संगीत ईश्वर है । आनन्द, अध्यात्म, करूणा, निवेदन, प्रेम, वात्सल्य और माधुर्य है । भारत में संगीत, युगान्तर से धर्म एवं आध्यात्मा से जुडा है । संगीत का उद्‌गम वेदों से माना जाता है । एक मान्यतानुसार भारतीय संगीत का जन्म सृष्टि के साथ ही हुआ है । संगीत मानव समाज की एक सहज काल्पनिक उपलब्धि है । सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक है । अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप के लिए एक माध्यम है । संगीत अखण्ड, असीमित और अनन्त है । भारतीय संस्कृति में संगीत का अपना विशिष्ट महत्त्व है । संगीत चौंसठ कलाओं में श्रेष्ठतम कला चतुर्दश विद्याओं में आत्मानन्द के उत्तम साधन के रूप में मानव को मिली है । सृष्टि में संगीत तत्त्व को स्वयं योगेश्वर कृष्ण, भगवती सरस्वती देवी, भगवान शंकर ने मानव कल्याण के लिए जन्म दिया है । उन्होंने क्रमशः मुरली, वीणा एवं डमरू धारण करके संगीत कला को एक अनूठा गौरव प्रदान किया है ।

शास्त्रों में वर्णित ६४ (चौसठ) ललितकलाओं का उद्देश मानव को परमानंद – ब्रह्मानंद की अनुभूति कराने का है । प्रकृति के प्रवाह के अनुसार भूखंड (पृथ्वी) के ऊपर जीव धारण करनेवाला किसी न किसी स्वरूप में अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है । परमतत्त्व के गुण के कारण ही कला की साधना होती है एवं एकाकारत्व के बाद कला व्यक्त होती है । व्यक्त कला देखनेवाले –सुननेवाले को आनंद देती है, जब की अव्यक्त कला जो कला सर्जक है उसको अनुभूति द्वारा आनंद प्राप्त कराती है ।

शोधार्थी द्वारा शोध के बाद यह जाना कि ६४ (चौसठ) ललितकलाओं में संगीत का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है । क्योंकि संगीत द्वारा मनुष्य अलौकिक और लौकिक दोनों सुख और आनंद की अनुभूति प्राप्त करता है । संगीत से केवल आनंद की अनुभूति होती है या आनंद आता है ऐसा नहीं है । संगीत में समाये हुए स्वर की अनंत सक्षमता एक नयी प्रकृति का निर्माण करती है । संगीत के स्वर में, संगीत की ध्वनि में समायी गहनता मानव की मानसिक स्थिति और मनोभाव को प्रभावित करती है एवं उसे बाहर भी लाती है । संगीत एक गति है और मानवीय क्रियाएं भी गति है । दोनों गतियाँ एक होने के कारण ही ध्वनि और स्वरयुक्त राग मानव आत्मा को प्रभावित करते हैं । प्रकृति, राग और लय से मानव प्रभावित होता है, उसका कारण उसकी नियमितता है । स्वर और

लय की एकरूपता मानव को प्रभावित करती है । संस्कृत भाषा के प्राचीन ग्रंथो में संगीत का अर्थ एवं उत्पत्ति के संदर्भ में अनेक बाते कही गई हैं । उन ग्रंथों में संगीत रत्नाकर, संगीत मकरंद, संगीत समयसार, संगीत दर्पण आदि का समावेश होता है ।

भारतीय संगीत कला है, शास्त्र है और विज्ञान भी है । भारत की कलाओं में संगीत सब से प्राचीन कला है । संगीत ध्वनि से बनता है और ध्वनि की उत्पत्ति सृष्टि के साथ ही हुई है । वैदिककाल से लेकर आजतक संगीत कला भौतिक उत्कर्ष, यश प्राप्ति के अलावा आध्यात्मिक परितृप्ति और परमतत्त्व की प्राप्ति का माध्यम माना गया है । सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही पैदा हुई ध्वनियों का उपयोग करके मनुष्यने उसे संगीत के रूप में रख दिया है और उसे विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत करके ध्वनियों का शास्त्रीयकरण किया है अर्थात् संगीत के जो स्वर हैं, वे प्रकृति की भेंट हैं । मनुष्य तो केवल उसे व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का माध्यम ही हैं ।

भारत के प्राचीन साहित्य वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण और सहिताओं में संगीत का उल्लेख पाया जाता है, जिससे जान सकते हैं कि भारत में संगीत का अस्तित्व वैदिककाल से पहले भी था । एक मान्यता के मुताबिक संगीत की उत्पत्ति सामवेद से हुई है । संगीत एक अर्मूत कला है एवं सृष्टि पर पूर्णतः आधारित है । आधुनिक समय में संगीत कला के भिन्न-भिन्न स्वरूप, प्रकार, तत्त्वों का दस्तावेजीकरण करने के बहुत प्रयत्न हुए, किन्तु साहित्य की तरह संगीतकला को पूर्ण रूप से समझने के लिये मुद्रण माध्यम पूरा सक्षम नहीं है । क्योंकि यह कला पूर्णतः कंठ और कर्ण के साथ संबंधित है ।

संगीत भाष्य के अनुसार संगीत एक नैसर्गिक और सनातन भाषा हैं, जिसके माध्यम से समय-समय पर हृदय के गुप्त और अव्यक्त भाव को कंठ स्वर द्वारा व्यक्त किया जाता है । संगीत एक ऐसी कला है कि जिसमें स्वर, लय और ताल के माध्यम से संगीतकार अपना मनोभाव व्यक्त करता है ।

संगीतकला का मुख्य कार्य मानव की अभिव्यक्ति के माध्यम से कला का दर्शन कराना है । हृदय के अव्यक्त भावों को व्यक्त करने के लिये सब से ज्यादा उपयोगी माध्यम संगीत है । भारतीय संस्कृति में नाटक, उत्सव, कर्मकांड, राज्याभिषेक आदि प्रसंगो में संगीत का विशेष महत्त्व रहा है ।

भारतीय संगीत उत्पत्तिकाल से दो प्रवाहों में कार्यरत है, जिसका प्रयोग मुख्य रूप से धार्मिक समारंभो, उत्सवों, विधि–विधान के समय किया जाता है । संगीत के इस प्रवाह को वैदिक या साम संगीत कहा जाता है । यह संगीत 'मार्ग संगीत' भी कहलता है । संगीत का दूसरा विभाग या प्रवाह लौकिक संगीत है । उसका उपयोग लोक समारंभो और जन मनरंजन के लिये होता है । वैदिककाल से ये दोनों संगीतप्रवाह समांतर चलते रहे हैं । दोनों पर एक–दूसरे का प्रभाव रहा है और अलग अलग विकसित हुए हैं ।

भूखनन के बाद मिले अनेक प्रमाणों, पौराणिक मूर्तियों और अन्य बातों को ध्यान में ली जायँ तो संगीत का उद्‌भव ईस्वीसन पूर्व आठ–नव हजार वर्ष पहले हुआ होने का अनुमान लगाया जा सके और उन बातों को ध्यान में रखकर संगीत की उत्पत्ति के संदर्भ में जब आधारभूत ढ़ंग से कोई बात प्रस्तुत करनी हो, तो संगीत की उत्पत्ति के काल का विभाजन निम्न अनुसार किया जा सके ।

(१) प्रागैतिहासिक काल : ईस्वीसन पूर्व ५००० से ९००० वर्ष

(२) वैदिक काल : ईस्वीसन पूर्व ९००० वर्ष से ११वीं सदी तक

(३) मध्य अथवा मुगलकाल : ईस्वीसन ११वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक

(४) आधुनिक काल : १८वीं शताब्दी से आज तक [1]

भारतीय संगीत अत्यंत प्राचीन होने के साथ साथ समृध्ध भी है । संगीत द्वारा मानव के ऊपर शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के प्रभाव उत्पन्न होते हैं । समयान्तर में संगीत में नये आयामों की वृध्धि, प्रयोग और खोज़ की गई है । इस प्रक्रियाओं के कारण वर्तमान भारतीय संगीत ज्यादा समृध्ध हुआ है ।

शोधार्थी द्वारा विषयोचित्त शोध के बाद यह जानकारी प्राप्त हुई कि भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति देवो द्वारा हुई है । यह अनेक तथ्यों से स्वीकृत हुआ है और उसकी पुष्टि के लिये उपवेदों और पुराणों में अनेक कथाएं मिलती है । वेद, उपनिषद और पौराणिक ग्रंथों में उसके महत्त्वपूर्ण उल्लेख देखने को मिलते हैं । संगीतकला के पुराने प्रवर्तक और उपदेशक देवी देवता हैं । भगवान शिव, ब्रह्मा, माँ सरस्वती, गंधर्व और किन्नर को संगीतकला के पूर्व प्रवर्तक माना जाता है और

1. वसंत / संगीत विशारद / पृ. 13

उसके मूल में ही यह उत्तम भावना छिपी है कि संगीतकला के उत्पत्ति कर्ताओंने दैवी प्रेरणा से उसे उत्पन्न की है । हिन्दु धर्मशास्त्रों के अनुसार प्रत्येक देवी–देवता किसी न किसी विद्या या उपविद्या के साथ जुड़ा हुआ है और उनके स्वरूप किसी न किसी वाद्य के साथ दर्शाया जाता है । भगवान शंकर के साथ डमरू, भगवान विष्णु के साथ शंख, पूर्ण पुरूषोतम भगवान श्रीकृष्ण के साथ बांसुरी, विद्या की देवी माँ सरस्वति के साथ वीणा और महर्षि नारद के साथ तानपुरा दर्शाया जाता है । प्राचीन शास्त्रों के विद्वानों के मतानुसार संगीतकला का उद्‌भव स्वयं परमात्मा द्वारा हुआ था । भारतीय परंपरा के अनुसार नटराज भगवान शिव नृत्य के आदि देव हैं और देवी भगवती माँ सरस्वती गायन और वाद्य कला की प्रवर्तक हैं । 'दन्तिल' के मतानुसार गांधर्व वेद के आदि प्रवर्तक–प्रवचनकार स्वयं ब्रह्मा है । नाट्यशास्त्र के अनुसार गांधर्व तत्त्वों को सम्मिलित करनेवाले नाट्यवेद की रचना स्वयं ब्रह्माजीने की थी । दंतकथा के मुताबिक संगीत की उत्पत्ति सृष्टि के प्रारंभ में निर्माणकर्ता भगवान ब्रह्माजीने की थी । ब्रह्माजीने यह कला शिवजी को और शिवजीने संगीत कला देवी सरस्वती को दी थी । उसके बाद देवी सरस्वती से महर्षि नारदने यह शिक्षा पाकर स्र्वगलोक के गंधर्वो, किन्नरों और अप्सराओं को दी । वहाँ से भरतमुनि नारद, हनुमानजी महाराज और अन्य ऋषि मुनि संगीतकला में पारंगत होकर मृत्युलोक या पृथ्वी पर इस कला के प्रचार के लिये अवतरित हुए ।

शोधकर्ता के अनुसार माँ सरस्वती भी संगीत के आदि प्रेरकों में विशेष स्थान रखती हैं । ब्रह्माजी की एक अन्य शक्ति का नाम सरस्वती है, जिसका अर्थ 'सरकना', 'गतिशील होना' है । सरस्वती ब्रह्माजी की वह शक्ति है, जिसके द्वारा ब्रह्मांड में गतिशीलता आती है और इस सरस्वती से ब्रह्माजीने ब्रह्मांड का सर्जन किया । सरस्वती 'शक्ति' का पर्याय है । शब्द और नाद शक्ति के पर्याय हैं । इसी कारण माँ सरस्वती संगीत सहित अनेक ललित कलाओं की जन्मदात्री मानी जाती है । जो शक्ति तमाम रसों से परिपूर्ण है और शुध्धि प्रदान करनेवाली है ऐसी शक्ति देवी सरस्वती है और इसी कारण भारतीय परंपरा के अनुसार किसी भी कला या विद्या के आरंभ में सर्व प्रथम ज्ञानदायिनी और शक्ति स्वरूपा माँ सरस्वती का पूजन–अर्चन किया जाता है ।

पुराणों में दर्शाया गया है कि देवी सरस्वतीने भगवान श्रीकृष्ण प्रभु की पत्नी बनने कि इच्छा व्यक्त की, जिसे ग्रहण न कर भगवान श्रीकृष्णने उनको विष्णु भगवान की पत्नी बनने की विनंती की ।

इस घटना से यह तय हुआ कि महामुर्खो को पंडित बनानेवाली विद्या की देवी सरस्वती के पूजन का आरंभ पूर्ण पुरूषोतम भगवान श्रीकृष्ण द्वारा हुआ ।

आद्यौ सरस्वती पूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ।

यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पंडितः ॥(1)

भगवान श्रीकृष्णने देवी सरस्वती को वरदान दिया कि प्रत्येक वर्ष के महा मास के सुद (शुक्ल) पक्ष में पंचमी के दिन लोग विद्या के आरंभ मे आपका महान पूजन करेंगे । पूजाकाल दरमियान और उसके बाद भी विद्वान आपकी आराधना करेगें और इस प्रकार महा मास की सुद पंचमी 'वसंत पंचमी' विद्यारंभ की मुख्य तिथी गिनी गई है ।

पीतवस्त्र परिधाना वीणा पुस्तकधारिणी ।

रत्नभूषण भूषिता सर्व शास्त्राधि देवता ॥(2)

अर्थात् – पीत वस्त्र धारण करनेवाली, जिसके दोनों हाथ वीणा और पुस्तक से शोभित हैं, वह तमाम शास्त्रों की अधिष्ठात्री देवी रत्न अलंकारों से बहुत ही शोभायमान है ।

माँ सरस्वती के कर कमलों में स्वरशास्त्र और शब्दशास्त्र हैं । इस दोनों द्वारा मानव में विचार और भावनाएं उत्पन्न होते हैं और उन्हें व्यक्त करने की अभिव्यंजना भी प्राप्त होती है ।

भारतीय ऋषि–मुनियोंने ज्ञान आदि छः वस्तुओं को अनादि माना है । ज्ञान का मुख्य केन्द्र वेद भी अनादि है । संगीत का संबंध वेदों से है अतएव यह भी अनादि है । भारतीय परंपरानुसार जिस प्रकार वेद प्रकट करनेवाले ब्रह्माजी माने गये हैं उसी प्रकार संगीत के क्षेत्र में दो आदि देव माने गये है – देवाधिदेव शंकर तथा सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी । नाट्यशास्त्र के रचयिता महर्षि भरत ने नाट्य का प्रारंभ भी ब्रह्माजी से ही माना है । भारतीय जनश्रुति के अनुसार वैवस्वत मन्वन्तर में त्रेता युग के लगने पर इन्द्र इत्यादि देवताओं ने भगवान ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हम दृश्य एवं श्रव्य क्रीडनीयक देखना चाहते हैं । भगवान ब्रह्माजीने ऋग्वेद से पाठ्य, साम से गीत, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस ले कर नाट्य वेद की रचना की । नाट्यवेद के ग्रहण, धारण, ज्ञान एवं प्रयोग

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 15
2. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 15

में देवता असमर्थ थे । फलतः देवराज इन्द्र की प्रार्थना पर भगवान ब्रह्माने महामुनि भरत को नाट्यवेद की शिक्षा दी । भरतने नाट्यवेद की शिक्षा प्राप्त की और अपने पुत्रों को भी शिक्षित किया । भगवान ब्रह्माने स्वाति एवं उन के शिष्यों को वाद्य तथा नारद और गांधर्वों को गान योग में नियोजित किया और बाद में 'अमृत मंथन' का प्रयोग हुआ । उसके प्रयोग से समस्त देव–दानव प्रसन्न हुए । गीत इस प्रयोग की शय्या थी । गीत पर सर्वप्रथम प्रयत्न किया गया था, क्योंकि गीत और वाद्य के भलीभाँति प्रयुक्त होने पर नाट्य प्रयोग में विपत्ति नहीं आती ।

अमृत मन्थन को सफल देखकर भगवान् ने नाटय प्रयोग शंकर को दिखाना चाहा और भगवान् शंकर के निवासी–स्थान पर गये । उन की स्वीकृति मिलने पर ब्रह्मा की आज्ञा से महर्षि भरत ने 'त्रिपुरदाह' का प्रयोग किया । इस प्रयोग से भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और बोले कि मैं ने भी प्रतिदिन संध्या काल नृत्य करते हुए 'नृत्य' का आविर्भाव किया है जो विभिन्न करणों एवं अंगहारों से विभूषित है, आप इस की योजना पूर्वरंगविधि मे किजिए ।

तत्पश्चात् ब्रह्मा की प्राथना पर भगवान् शंकर ने तण्डु को बुलाकर भरत को अंगहारों का प्रयोग सिखाने की आज्ञा दी । तण्डु ने भुवनेश्वर की आज्ञा का पालन कर भरत को अंगहारों का प्रयोग बताया । भगवान् शंकर ने रेचकों, अंगहारों एवं पिण्डाबन्धों की सृष्टि कर के तण्डु को सिखाया । उन्होंनें गान–भाण्ड समन्वित जिस नृत्त प्रयोग की सृष्टि की, वह ताण्डव कहलाया । इसी अवसर पर भगवती पार्वती ने लास्य का प्रदर्शन किया । स्त्री– पुरूषाश्रित श्रृंगार सम्बन्धी गान में पार्वती रचित ललित अंगहारों का प्रयोग विहित हुआ ।

शोध दरम्यान प्राप्त हुई माहिती अनुसार शोधार्थी को यह ज्ञात हुआ कि स्वतन्त्र गान–वादन का प्रयोग नाट्य के आर्विभाव के पूर्व से ही होता चला आया है । अर्थहीन शुष्काक्षरों का लय–ताल से समन्वित रूप निगीत कहलाता था । नारद इत्यादि गन्धर्वो ने उसे समा में देव–दानवों को सुनाया । दैत्यों ने भी सफलतापूर्वक निगीत की साधना की । दैत्यों के प्रति ईर्ष्या के कारण देवता निगीत को 'बहिर्गीत' कहने लगे । नाटक के प्रादुर्भाव के पूर्व ही गान, वादन एवं नृत्य स्वतन्त्र रूप से विकसित हो चुके थे जिन्हें रसपरिपाक में सहायक होने के कारण नाट्य में भी सम्मानपूर्वक ग्रहण किया गया ।

'संगीत मकरन्द' के रचयिता नारद ने भी संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी है किन्तु संगीत–रत्नाकर के रचयिता आचार्य शारंगदेवने संगीतोत्पत्ति सदाशिव से मानी है । आचार्य शारंगदेव ने संगीतोत्पत्ति से ले कर अपने युग के अनेक नामों की सूची दी है । जिस में सदाशिव, शिवा, ब्रह्मा, दुर्गा, शक्ति, वायु, रम्भा, अर्जुन, नारद आदि पौराणिक नामों के साथ भरत, कश्यप मुनि, मतंग मुनि, कोहल, दत्तिल, तुम्बुरू, रूद्रट, नान्यदेव, भोजराज आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के भी नाम हैं । संगीतोत्पत्ति के अन्य मत भी है : शिव पुराण के मतानुसार नारदजी ने अनेक वर्षो तक योग–साधना की, तब भगवान शंकर ने उन पर प्रसन्न हो कर संगीत कला प्रदान की । पार्वतीजी की शयन मुद्रा को देख कर शिवजी ने अनेक अंग–प्रत्यंगो के आधार पर 'वीणा' बनायी और अपने पाँचों मुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति की । तत्पश्चात् छठा राग पार्वतीजी के श्रीमुख से उत्पन्न हुआ । शिवजी के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा आकाशोन्मुख सहित मुखों से क्रमशः भैरव, हिण्डोल, मेघ, दीपक और श्रीराग प्रकट हुए एवं पार्वतीजी द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई ।

'शिव प्रदोष' स्तोत्र में लिखा है कि तीन जगत की जननी गौरी को सुवर्ण–सिंहासन पर उपवित करा कर प्रदोष के समय शूलपाणि शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की । इस अवसर पर सब देवता उन्हें घेरकर खड़े हो गये और उनकी स्तुति–गान करने लगे । सरस्वती ने वीणा, इन्द्र ने वेणु, ब्रह्मा ने करताल बजाना आरम्भ किया । लक्ष्मीजी ने गाना गाया तथा विष्णु भगवान् मृदंग बजाने लगे । इस नृत्यमय संगीतोत्सव को देखने के लिए गन्धर्व, यक्ष, मातंग मुनि, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देवता, अप्सराएँ आदि सभी उपस्थित थे ।

शोधार्थी द्वारा अनेक कथाओं का अध्ययन करते समय यह जाना कि संगीत उत्पत्ति की अनेक कथाएँ भारतीय शास्त्रों में उपलब्ध है । फ़ारसी की एक कथा में बताया गया है कि प्राचीन काल में एक समय हज़रत मूसा पैग़म्बर नाव की सैर कर रहे थे, उसी समय उन्हें एक पत्थर दिखाई दिया । अचानक वहाँ ब्राइल नामक एक फ़रिश्ता आया और उस ने पैग़म्बर से उस पत्थर को सदैव अपने पास रखने को कहा । कुछ समय पश्चात् एक दिन हज़रत मूसा जंगल में सैर कर रहे थे, उसी समय उन्हें प्यास लगी, परन्तु पानी प्राप्त नहीं हुआ । प्यास बढ़ती ही गयी और वे बहुत चिन्तित हो उठे । उन्होंने खुदा से बन्दगी की और फलस्वरूप कुछ ही देर बाद वर्षा शुरू हो गयी । पानी की धार उस

पत्थर पर गिरने लगी, फलस्वरूप उस पत्थर के सात टुकड़े हो गये । इन सात टुकड़ों के द्वारा पानी की सात धाराएँ प्रवाहित होने लगी । उन धाराओं से सात ध्वनियाँ निकलीं जिन्हें हज़रत मूसा ने आत्मसात् कर लिया । ये ही सात ध्वनियाँ संगीत के मुख्य सात स्वर समझी जाने लगी । कई लोगों का कहना है कि कोहकाल में एक पक्षी है जिसे फ़ारसी में 'आतिशज़न' कहते हैं । इस पक्षी की चोंच के सात छिद्रों से सात प्रकार के स्वर निकलते हैं । जिन्हें मुख्य स्वर मान लिया गया ।

हिन्दु धार्मिक परम्पराओं के अनुसार संगीत के जन्म के सन्दर्भ में मान्यता है कि संगीत का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने शिवजी को दिया शिवजीने इस कला का ज्ञान बुद्धि एवं कला की अधिष्ठात्री दैवी माँ सरस्वती को दिया । माँ सरस्वती ने नारदजी को, हनुमानजी महाराज और ऋषियों को, तत्पश्चात् संगीत का प्रचार भू लोक में हुआ । प्राचीन काल में संगीत के स्थान पर गान्धर्व शब्द का प्रयोग मिलता है । बाल्मीकि रामायण में लव–कुश के रामायण गान के लिए जो 'गान्धर्व' शब्द प्रयोग में आया है, वह गायक के रूप में लिया गया है ।

पुराविदों के अनुसार संगीत कला तथा शास्त्र का उद्‌भव स्वयम्भू परमेश्वर से हुआ है । भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्य कला के आदि स्त्रोत हैं तथा भगवती सरस्वती गीत तथा वाद्य कला की प्रवर्तिका है । पं. दतिल के अनुसार गान्धर्व के आदि प्रवचनकार स्वयंभू ब्रह्मा हैं । नाट्यशास्त्र के अनुसार गान्धर्व के तत्त्वों को समाहित करनेवाला नाट्यवेद स्वयं ब्रह्मा की रचना है । नृत्यकला ताण्डव और लास्य रूप भगवान शिवजी तथा माँ पार्वतीजी की देन माना जाता है ।

पार्श्वस्थ पशु तथा प्रकृति की विभिन्न ध्वनियों को सुनकर तथा उनकी मंजुलता को अनुभूत कर स्वयं ऐसी ही ध्वनियों को गाने की प्रेरणा आदि मानव को हुई हो, तो कोई आश्चर्य नहीं । इसी प्रकार मृगया तथा युद्ध के समय पर धनुष की प्रत्पंचा से उद्‌भूत होनेवाली टंकार को सुनकर तन्तुवाद्य की परिकल्पना उसने की हो, ऐसी यथार्थ कल्पना भी की जा सकती है । नाट्यशास्त्र के अनुसार मृदंग वाद्य की परिकल्पना पत्तों पर गिरनेवाली जल बिन्दुओं के आघात शब्दों में हुई है ।

संगीत का उद्‌गम मानव जाति के उद्‌भव के साथ हुआ है । मानव का जैसे ही नेत्रोन्झीलन हुआ, उसके कण्ठ से ध्वनि नि:सतृ हुई । रूदन तथा गान इसी सहज ध्वनि के रूपान्तर हैं । कण्ठ

मानव की सहजे वं स्वाभाविक विभूति है, जो उसके गीत तथा वाद्य के स्वर क्षेत्र को निर्धारित करती है । मानव का कण्ठ स्वयं एक वाद्य है, जो स्वर की सूक्ष्मताओं को आत्मसात करने की शक्ति रखता है ।

सुप्रसिद्ध विद्वान श्री दामोदर पण्डित के मतानुसार संगीत के मुख्य सात स्वरों का आविर्भाव इस प्रकार से हुआ है : मोर से षड्ज, चातक से रिषभ, बकरा से गान्धार, क्रोंच पक्षी से मध्यम, कोयल से पंचम, मेढ़क से धैवत और हाथी से निषाद स्वर की उत्पत्ति होती है ।

कुछ विद्वानों का मत है कि संगीत का जन्म ओम् शब्द के गर्भ से हुआ । ओम् शब्द एकाक्षर हो कर भी अ, उ, म–इन तीन ध्वनियों से निर्मित हुआ है । तीनों अक्षरों के संयोग से इस की ध्वनि एक ही अक्षर के समान होती हे । इसी लिए इसे एकांक्षर कहा जाता है । ओम् के तीनों अक्षर अ, उ, और म तीन शक्तियों के द्योतक है । अ– उत्पत्ति शक्ति–द्योतक सृष्टिकर्ता ब्रह्मा । उ–धारक, पालन, रक्षण अर्थात् स्थिति शक्ति का प्रतीक विष्णु । म –महेश शक्ति का द्योतक है । तीनों शक्तियों का पुंज ही 'त्रिमूर्ति' परमेश्वर है ।

ओम् वेद का बीज मन्त्र है । इस के विषय में मनु कहते है कि ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद से ‘अ’, ‘उ’, ‘म’–ये तीन अक्षर लेकर प्रणव ओम् बना है । श्रुति–स्मृति के अनुसार यह प्रणव परमात्मा का अनुपम नाम है ।

महर्षियों ने वेदांग शिक्षा–शास्त्र द्वारा यह भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि प्रणव में तीनों गुणों की तीन शक्तियाँ भरी पड़ी है । उसी कारण प्रणव, ह्रस्व, दीर्घ प्लुत तीनों स्वरों की सहायता बिना उच्चारण नहीं किया जा सकता । गान्धर्व उपवेद सम्बन्धी शिक्षाओं में भली भाँति वर्णित है कि षड्ज आदि सातों स्वर एक मात्र ओंकार के ही अन्तर्विभाव है । जिस प्रकार बहिर्सृष्टि में सात दिन, सात रंग, सात धातु आदि सप्त विभाग पाये जाते हैं, और जिस प्रकार अन्तर्राज्य मे सप्त ज्ञान–भूमिका आदि सप्त विभागों का विवेचन मिलता है, उसी प्रकार एक मात्र अद्वितीय शब्द ब्रह्मरूपी ओंकार षड्ज आदि सप्त स्वर–विभाग में विभक्त हो कर नाना शब्द–राज्य की सृष्टि किया करता है । इसी कारण शब्द ब्रह्मरूपी ओंकार सब तन्त्रों का चालक है । शब्द और स्वर दोनों की उत्पत्ति ओम् के गर्भ से हुई है । प्रथम स्वर प्रस्तुत हुआ, तदुपरान्त शब्द निकले । पहले मनुष्य को

स्वर सुनाई दिये इस के बाद शब्द सुनाई दिये । मूख से उच्चारण होने योग्य प्रणव, अलौकिक नाद का प्रतीक शब्द है, तथापि वह केवल लौकिक सम्बन्ध मे आविष्कृत नहीं हुआ हे । तन्त्रों में यह प्रतिपादित है कि मुख से उच्चारण होने योग्य ओंकार ध्वनि ही अपूर्व रीति से आधार–पद्म से उठकर सहस्त्रदल स्थित पुरूष में लय हुआ करती है ।

वास्तव में ओम् शब्द ही संगीत के जन्म का उपकरण है । समस्त कलाएँ ओम् के विशाल गर्भ से आविर्भूत हुई है । जो ओम् की साधना कर पाते हैं, वे ही वास्तव में संगीत का यथार्थ रूप समझ पाते हैं । इस में लय, स्वर सभी कुछ है । भारतीय परम्परानुसार विषयों के समान संगीत का सम्बन्ध भी वेदों से माना गया है ।

संगीत शब्द की व्युत्पत्ति "सम् गै (गाना) + कत्" है, अर्थात् "मै" धातु में "सम" उपसर्ग लगाने से यह शब्द बनता है । "मै" का अर्थ है, गाना और सम (स) एक अवयव, जिसका व्यवहार समानता, संगति उत्कृष्ट, निरन्तरता औचित्य आदि सूचित करने के लिए किया जाता है । अतः संगीत का अर्थ "उत्कृष्ट, पूर्ण तथा औचित्यपूर्ण ढंग से गायन" माना जाता है । संगीत शब्द "गीत" में सम् उपसर्ग लगाकर बना है । सम यानी "सहित" और "गीत" यानि "गान" । "गान के सहित" अर्थात् अंगभूत क्रियाएँ (नृत्य) एवं वादन के साथ किया हुआ कार्य संगीत कहलाता है ।

नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्त वाद्यं गीतानुवृति च ।

अतो गीत प्रधानत्वादत्राऽऽदावभिधीयते ॥(1)

अर्थात् गान के आधीन वादन और वादन के आधीन नर्तन है, अतएव इन कलाओं में गान को ही प्रधानता दी गयी है । गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते । संगीत रत्नाकर के अनुसार, गीत, वाद्य और नृत्य तीनों मिलकर संगीत कहलाते हैं । तीनों कलायें परस्पर स्वतंत्र होते हुए भी एक दूसरे से जुडी है, जैसे गायन के आधीन वादन और वादन के आधीन नर्तन । ग्रीक विद्वान आगस्टाइन भी संगीत की परिभाषा में तीनों का समावेश मानते हैं । पश्चिम में संगीत के लिए म्यूजिक शब्द का प्रयोग किया गया है । म्यूजिक शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द मौसिक से मानते हैं । वस्तुतः म्यूज शब्द मूल है । ग्रीक परम्परा में यह उन देवियों के लिए प्रयुक्त संज्ञा है, जो विभिन्न

1. चौधरी, सुभद्रा(अनुवादक) / संगीत रत्नाकर / पृ. 14

ललित कलाओं की अधिष्ठात्री मानी जाती है । ग्रीक पुराण कथाओं में इनका सम्बन्ध उस चतुर्वणीय उत्सव से भी जोड़ा जाता है, जिसमें सम्भवतः गायन और वादन स्पर्धा आयोजित की जाती थी । उसी हैलीकेन पर्वत पर रहनेवाली अनेक देवियाँ उसमें भाग लेती थीं ।

अरबी परम्परा में संगीत का समानार्थी शब्द "मुसीकी" है । इसकी व्युत्पत्ति "मूसिका" शब्द से मानी जाती है । मूसिका युनानी भाषा में आवाज को कहते हैं । इसलिए "इल्में मूसिकी" (संगीत कला) "आवाजों" यानी रागों का इल्म कहलाने लगा ।

शोधार्थी द्वारा शोध बाद यह ज्ञात हुआ कि संगीत जीवन के बिना जीवन सत् और चित् का अंश हो कर भी आनंदरहित और नीरस प्रतीत होता है । संगीत ईश्वरीय वाणी है और ब्रह्मरूप भी है । शास्त्रों से ज्ञात होता है कि ब्रह्म एक, अखंड, अद्वैत होते हुए भी परब्रह्म और शब्द ब्रह्म–इन दो रूपों में है । शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार होने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

1.2 संगीत के विभिन्न प्रकार

संगीत दो धाराओं में प्रवाहित हो रहा है । एक धारा तो वह जिसमें संगीत – कला का परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप, जिसे प्राचीन ग्रन्थों में गान्धर्व अथवा मार्गी संगीत कहते हैं । जिसकाअन्तिम लक्ष्य है – मोक्ष प्राप्ति । दूसरी धारा – जिसका लक्ष्य, जन, मन–रंजन होने के कारण जन साधारण की सहज अभिव्यक्ति यथा रूचि अनुकूल परिवर्तन होना । जिसे देशी संगीत भी कहते हैं । अतः संगीत के दो रूप हैं :

१. शास्त्रीय, २. भाव

1.1.1 शास्त्रीय संगीत

शास्त्रीय संगीत वह संगत है जो शास्त्रों, नियमों के अनुसार विविधविधान में बँधा हुआ है । जो स्वर, लय, तान आदिनियमों में बाँधकर आकर्षक रीति से गाया अथवा बजाया जाता है । शास्त्रीय संगीत के भी दो अंत हैं ।

1.1.2 सैद्धान्तिक शास्त्रीय संगीत

जिसमें संगीत का सम्पूर्ण शास्त्र आ जाता है । संगीत के पारिभाषिक शब्द जैसे नाद, श्रुति, स्वर, सप्तक, थाट, राग, ग्राम, मूर्च्छना, नमक, तान आलाप आदि आते हैं । यह अंग लिखित है, उनके नियमों से बँधा है, विस्तृत है ।

1.1.3 व्यवहारिक शास्त्रीय संगीत

संगीत कला व्यवहारिक कला है, इसमें गायन के प्रकार, नृत्यु अथवा वादन के प्रकार, गायन शैली, धराने, ध्वनि का उतार–चढाव, आलापकारी तानें आदि आते हैं ।

शास्त्रीय संगीत की अपनी कुछ विशेषतायें हैं । शास्त्रीय संगीत में धुन नहीं, वरन् स्वर तत्त्व की साधना एवं कल्पना की विविधता पर महत्त्व दिया जाता है, स्वरों की विभिन्न सजावटों द्वारा राग का चित्रण करना ही गायक का प्रयोजन होता है । अतः वही राग भिन्न–भिन्न प्रकार का आनन्द देता है । शास्त्रीय संगीत भारत राष्ट्र की सांस्कृतिकनिधि है ।

शास्त्रीय संगीत की अपनी अनेक शैलियाँ हैं, जैसे – ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि, जो विभिन्न समयानुसार बाहरी प्रभावों के कारण प्रचलित होती रही हैं । किन्तु यह परिवर्तन बाहरी स्वरूप में होता रहा है, शास्त्रीय संगीत के मूलभूत नियमों में नहीं ।

1.1.4 भाव संगीत

भाव संगीत नियमों का कठोरता से पालन अनिवार्य नहीं होता । लय, स्वर तथा काव्य के समन्वय से जन मनोरंजन करना ही लक्ष्य होता है । परम्परागत संगीत, लोक संगीत, भाव गीत, भजन व चित्रपट आदि भाव संगीत कहलाते हैं । भाव संगीत, संगीत का वह सरल रूप है, जिसके अन्तर्गत लोक संगीत परम्पराओं, रीति–रिवाजों का साक्षात् रूप देखने को मिलता है । जैसे – शादी के गीत, वर्षा के गीत, विरह के गीत, लोरी, माहिय भटियाली मांझी आदि लोकगीत आते हैं । ये गीत वैयक्तिक या सामूहिक सुख–दुःख को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से विभिन्न अवसरों पर गाये जाते हैं । भाव संगीत की परम्परागत स्थानीय भाषा एवं सामाजिक भावनाओं से सम्बन्ध होता है । इस लिये स्थानीय बोलचाल, रहन–सहन, वेश–भूषा तथा आचार–विचार का प्रभाव पडता है ।

लोक संस्कृति का प्रतीक है । इसमें मानव की रूचि स्वभाविक एवं परम्परागत होते हैं । लोक–साहित्य से गहरा सम्बन्ध होता है । जयदेव, सूर, तुलसी, मीरा के गीत इसके प्रमाण हैं ।

1.3 नाद

संपूर्ण ब्रह्मांड ही नादमय है । नाद से वर्ण, वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य और वाक्यों से भाषा उद्‌भूत होती है । भाषा से सृष्टि का व्यवहार चलता है, अतएव संपूर्ण सृष्टि ही नाद के आधीन है । इसी लिए तो कहा गया है कि "नादाधिनाम् जगत् सर्वम् ।" वैज्ञानिक दृष्टि से संगीत–सृष्टि ध्वनि–आंदोलनों का परिणाम है । दो वस्तुओं की टक्कर अथवा रगड़ पास की वायु को आंदोलित करती है तथा जल–तरंगी की भाँति वह वायु वातावरण में कंपन उत्पन्न करती हुई मानव कर्ण–यंत्र में प्रवेश कर प्रकृति–प्रदत्त कर्ण–यन्त्र को स्पन्दित करती है जिस से मानव चेतना को ध्वनि का अनुभव होता है । जब तक मानव कर्ण–यन्त्र वातावरण में उत्पन्न आंदोलनों को ग्रहण नहीं करते तब तक उनके लिए ध्वनि का कोई अस्तित्व नहीं होता । यद्यपि विश्व नाद से भरपूर है किन्तु मानव कर्ण–यंत्रों की सीमित शक्ति के कारण श्रवण नहीं कर पाते ।

ध्वनि अथवा नाद दो प्रकार का होता है । एक वह है जिस का संगीत में उपयोग होता है तथा दूसरा वह जिस का संगीत में उपयोग संभव नहीं है । दोनों प्रकारों के नादों की उत्पत्ति में अंतर का मूल आधार ध्वनि–आंदोलन में निहित है । यदि ध्वनि–आंदोलन का कंपन अनियमित हो तो अद्‌भूत नाद संगीतानुपयोगी होगा एवं यदि ध्वनि–आंदोलन नियमित कंपनयुक्त हो तो वह नाद संगीतोपयोगी होगा ।

समस्त प्रकृति वस्तु जगत् गतिमान् है । चेतना, गति का प्रतीक है और चेतना– शून्य वस्तु कल्पनातीत है । जो वस्तु स्थिर प्रतीत होती है वह भी वैज्ञानिकों की दृष्टि में गतिमान् है । वैज्ञानिक पहाड़ों में कंपन तथा पत्थर के छोटे– छोटे टुकड़ो में धड़कन का अनुभव करते हैं । कंपन न केवल मानवहृदय में है अपितु मानवशरीर का कण–कण सदैव कंपित होता रहता है । मृत्यु के पश्चात् भी यह गति बंध नहीं होती किन्तु ऊपरी धड़कन रूक जाती है । इस प्रकार समग्र ब्रह्मांड में चेतना का साम्राज्य है और इस चेतना का मूल आधार गति है ।

शोधार्थीने शोध दरम्यान यह जानकारी पायीं है कि नियमित गति ही लय है, जो प्रबल–अवल की भावनाओं की भी जननी है । गति का यह बल–अबल अनजाने ही प्रकट होता है । संगीत के स्वरों में प्रबलत्व तथा अबलत्व के कारण छोटे बड़े स्वर–समूह निर्मित होते हैं जो मानवीय भावों के उद्‌घाटन में सहायक बनते हैं । इन लय–खंडों के समूहों का विस्तार ही भारतीय संगीत में आगे चल कर ताल के रूप में प्रस्फूटित हुआ । सृष्टि का समस्त अंतर–बाह्य व्यापार गति के शाश्वत नियमों से बँधा हुआ है ।

संगीत का दूसरा तत्त्व स्वर है । स्वर– स्वर समूह अथवा धून विशेष, जिस में प्रकृति का व्यापक स्वरूप परिलक्षित होता है । स्वरों में भी आरोहण–अवरोहण के रूप में उतार–चढ़ाव का क्रम विद्यमान रहता है । कुशल कलाकार अपने संगीत में स्वर–प्रतीकों से अनुभूतियों को व्यक्त करता हुआ प्रकृतिजन्य आनंद को अपने स्वरों में समेट कर विश्व को विर्भोर कर देता है । भारतीय विद्वानों ने संगीत को हृदयगत भावों के उद्‌घाटन का एक सबल साधन माना है । प्राणी मात्र की रूदन, चित्कार और हस्य इत्यादि क्रियाओं से जनित ध्वनियाँ निर्बाध, निरपवाद एवं अव्यभिचारित रूप से सदा एक जैसी रही है । विभिन्न भावों को प्रकाशित करनेवाली ध्वनियाँ संगीत की उत्पत्ति में मूल हेतु हैं । चेतना के प्रथम स्पंदन से प्राणवायु की उल्लासना के फलस्वरूप आकार इत्यादि वर्णों के रूप विशेष से हीन जो वाक् उत्पन्न होती है, वह नादरूप रह कर हर्ष, शोक वृत्तियों को विधि–निषेध इत्यादि अभिप्राय को उस कार्य के बोधक तादात्म्य के कारण श्रुति को अंत एवं आदि से युक्त कर देती है । नाद से चितवृत्ति का अनुमान सिद्ध है ।

नाद भावाभिव्यंजक होने पर भी बाह्य जगत के चित्रण में वाक्यार्थ जैसा अर्थ– बोधक नहीं होता । इसीलिए भाषा का आविष्कार हुआ । किन्तु भाषा भी नाद के उतार– चढ़ाव के अभाव में भावाभिव्यक्ति में असमर्थ रहती है । फलतः भावाभिव्यक्ति के लिए ध्वनि के चढ़ाव–उतार का उपयोग करते हैं । वैदिक उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, कम्पित, दीप्त आदि ध्वनि के इसी उतार–चढ़ाव की ओर संकेत करते हैं । सम्भाषण तथा गान–दोनों में भावाभिव्यक्ति के लिए उक्त उच्चत्व एवं नीचत्व आवश्यक हैं, किंतु यह निश्चित अवधान ग्रहण करने पर संगीतोपयोगी स्वर बन जाता है और इस का प्रयोग गान कहा जाता है ।

संगीत के स्वरों के अनुरणनमय रक्तिप्रधानत्व को छोड़कर उच्च, नीच एवं मध्यम स्थान का स्पर्शित्व ही संवाद बोलने के लिए उपयोगी है । यदि पाठय में भी प्रधानता से स्वरगत रंजन का अवलम्बन किया गया, तो वह 'पाठ' न रह कर 'गान' हो जायेगा । ध्वनि का जो उतार-चढ़ाव सामान्य बोलचाल में भावों को व्यक्त करता है, वही नियत अवधान होने पर संगीत के स्वरों का स्थान ले लेता है । इसी अवधान से संगीतोपयोगी सात स्वर, षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत एवं निषाद का जन्म हुआ ।

नाद ब्रह्मांड की एक ध्वनि है, जिसे मनुष्य अपने कानों से सुन सकता है । प्राचीन ग्रंथों और विद्वानों ने नाद को ब्रह्म कहा है । संपूर्ण जगत नाद के आधीन है "ऐसा मंतव्य सभी प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रंथों और विद्वानों द्वारा जानने को मिलता है । नाद का मूल उत्पत्ति स्थान वायु और अग्नि है । इन दो प्राकृतिक तत्त्वों के संयोग से नाद उत्पन्न होता है ।

"संगीत रत्नाकर" में प्रथम स्वरगत अध्याय में श्लोक संख्या-६ में कहा है ।

नकारं प्राणानामानं दकारमनलं विदुः ।

जातः प्राणाग्नि संयोगात्तेन नादोऽभिधीयते ॥[1]

अर्थात् 'नकार' प्राणवाचक (वायुवाचक) तथा 'दकार' अग्निवाचक है, इसलिये जो वायु एवं अग्नि के सम्पर्क या सम्बन्ध से उत्पन्न होता है; उसे नाद कहते हैं । नाद के दो भेद कहे गये हैं । (१) आहत नाद (२) अनाहत नाद । अनाहत नाद में लीन संगीतकार ब्रह्मानंद का अनुभव करता है, तो दूसरी तरफ संगीत उपासक आहत नाद में एकाकार होकर ब्रह्मानंद की अनुभूति करता है ।

"संगीत मकरन्द" में नाद के दो प्रकार बताये हैं ।

(१) आहत नाद (२) अनाहत नाद

अनाहत नाद नाभि में स्थिर रहकर कायम बिना आघात के शब्द का रूप धारण करता है, किन्तु आम आदमी के लिये यह प्राप्ति योग्य नहीं हैं ।

जब कि आहत नाद वायु के आघात से हृदय, कंठ एवं तालु इन तीन स्थानों में उत्पन्न होता हैं । यह नाद संगीत के लिये उपयोगी माना जाता हैं ।

---

1. चौधरी, सुभद्रा(अनुवादक) / संगीत रत्नाकर / पृ. 20

नाद के दो प्रकारों के बारे में "संगीत रत्नाकर" में पंडित सारंगदेव ने लिखा है :

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते ।

सोऽयं प्रकाशतेपिण्डे तस्मात् पिण्डोऽभिधीयते ॥[(1)]

अथार्त्, नाद के दो प्रकार माने जाते हैं – आहत और अनाहत । ये दोनों पिंड अर्थात् मानवदेह में उत्पन्न होते हैं और इसी कारण पिंड का वर्णन किया जाता है ।

- **आहत नाद**

आहत ध्वनि दो वस्तुओं के संघर्ष अथवा स्पर्श से उत्पन्न होती है एवं कान उसे सुनता है । उसे आहत नाद कहते हैं । संगीत में गायन और वादन में उसका उपयोग होता है । यह नाद भव सागर पार करानेवाला माना जाता हैं । इस बात के समर्थन में "संगीत दर्पण" में दामोदर पंडित ने लिखा है :

स नादो त्वाहतो लोके रंजको भवभंजकः।

श्रुत्यादि द्वारतः तस्मात् तदुत्पत्तिर्निरूप्यते ॥[(2)]

अर्थात् "आहत नाद व्यवहार में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना आदि से रंजक बनता है और भवभंजक का रूप धारण करता है और इसीलिये मैं उसकी उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ ।"

- **अनाहत नाद**

जो नाद घर्षण या स्पर्श के बिना उत्पन्न होता है और जिसकी उत्पत्ति का कारण अज्ञात है, उसे 'अनाहत नाद' कहा जाता है । अनाहत नाद सुनने के लिये दोनों कान बन्द करने पड़ते हैं और उसके बाद जिस आवाज़ की अनुभूति होती है, वह 'अनाहत नाद' है । ऋषि–मुनि, साधक इत्यादि इस नाद की साधना द्वारा पूजा और उपासना करते हैं । स्थूल जगत की ध्वनि कान से सुनाई देती है, जब कि 'अनाहत नाद' को सुनने के लिये अंत:करण और कान दोनों का संयुक्त उपयोग किया जाता है । नाद स्वरूप के साक्षात्कार और ध्यान के बार में 'नाद बिन्दूपनिषत्' में ३३ से ४१ मंत्रों में अत्यंत गहराई से नादानुभूति का वर्णन किया गया है । प्रथम जब अनाहत नाद के अभ्यास की प्रक्रिया शुरू की जाती है, तब अनेक तरह के नाद बहुत जोर–जोर से सुनाई देते हैं । आरंभ के इस नाद की ध्वनि जागरी, झरना, भेरी, बरसात और समुद्र के उछलते तरंग जैसी सुनाई देगी । नाद में

---

1. चौधरी, सुभद्रा(अनुवादक) / संगीत रत्नाकर / पृ. 58
2. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 34

भ्रमर, वीणा, बंसी और किंकणी जैसे गूंजन पूर्ण एवं मधुर नाद सुनने को मिलेंगे । इस ध्यान को क्रमशः बढाने से मानसिक ताप का शमन होने के परिणाम प्राप्त होंगे । 'प्रणव भारती' नामक ग्रंथ में पंडित ओमकारनाथ ठाकुर ने अनाहत नाद के बारे में विस्तृत माहिती दी है । अनाहत नाद के दश प्रकारों का वर्णन किया गया है । (१) चिणी, (२) चिंचिणी, (३) स्वेदन, (४) शंखनाद, (५) तन्त्रीनाद (६) करताल नाद, (७) बंशी नाद (वीणा के सभी तार एक साथ बजते हों ऐसा मणिकार) (८) मृदंगनाद (प्रचंड घोष, जिसे ध्वनिगत नाद कहते हैं ।) (९) भेरी, (१०) मेघनाद ।

प्रथमं चिंचिणी गायं द्वितीयं गात्र भंजनम् ।

तृतीयं स्वेदनं याति चतुर्थं कांपते शिरः ॥

पञ्चमं स्रवेद् तालु षष्ठमृत निषेवणम् ।

सप्तमं गूढ विज्ञानं परावाचा तथाष्टमे ॥

अदृश्यं नवमे देहं दिव्यं चक्षुस्तथामलम् ।

दशमं परमं ब्रह्म भवेद् ब्रह्मात्मसंनिधौ ॥[1]

''पहले चिणी नाद उत्पन्न होता है, जो शरीर में झनझनाहट पैदा करता है । दूसरा चिंचिणी नाद उत्पन्न होने से शरीर टूटने लगता हैं । तीसरा स्वेदन नाद उत्पन्न होने से शरीर में प्रसव (प्रस्वेद) पैदा होता है । चौथे शंखनाद के कारण मस्तक काँपने लगता हैं । पाँचवे तंत्री नाद के प्रागट्य से तालु से अमृत टपकने लगता है । छठे करताल रूपी नाद से अमृत की अनुभूति होती है । सातवें बंसी नाद से रहस्य–मय विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है । आठवे मृदंग नाद से पराध्वनि का गान होता है और जिसके द्वारा वचनसिद्धि प्राप्त होती है । नवें 'भेरी' नाद से शरीर की सुन्दरता, अदृश्य सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है और दशवें मेघनाद से साधक समाधि में ब्रह्म को प्राप्त करता है और ब्रह्म रूप होकर उसमें लीन हो जाता है ।

शोधार्थी के अनुसार अनुभूति से प्राप्त किये हुए अनाहत नाद की उत्पत्ति के लिये वाद्य–यंत्रों का आविष्कार किया गया और उसकी ध्वनि अनाहत नाद के नज़दीक है और इससे ही अनुभवजन्य बाबतों के आधारों के बाद ॐ शब्द के जाप महत्त्व का रूप प्राप्त करता गया । प्राणवायु दिमाग में

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 36

आये हुए सहस्त्रकमल के साथ टकराता है वह ध्वनि 'ॐ' शब्द के साथ मिलती झुलती है ओर इसीसे शास्त्रीय भाषा में उसे 'सोऽहम्' ध्वनि कहा जाता है ।

प्राचीन विद्वानों के मतानुसार जब सृष्टि का सर्जन हुआ, उस समय जो विस्फोट हुआ था, वह आवाज़ 'ॐ' की आवाज़ जैसी ही थी और इस कारण सृष्टि की उत्पत्ति में 'ॐ' का स्थान और महत्त्व सिद्ध किया गया है । मानव शरीर में से उत्पन्न स्वर में भी 'ॐ' नाद की झांकी होती हैं ।

नादब्रह्म अथवा शब्द ब्रह्म प्रकृति और पुरुष के संयोग स्थल से निरन्तर प्रसूत और नानादित होता रहता है, जो अनाहत ध्वनि है । नादब्रह्म की उपासना करनेवाला योगी सिद्ध आसन धारण कर वैष्णवी मुद्रा में अनादत ध्वनि को सुनते हैं । स्वर साधना का अन्त होने के बाद नादब्रह्म की आराधना शुरू होती है । नादब्रह्म की साधना से मानव में बहुत शक्यिों का संचार होता है । मानव के अन्दर छिपी गुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं और साधक इन्द्रियातीत उत्तम सुख का अनुभव करता है तथा इस प्रकार शक्तिसाधना के बाद मानव मनोवांछित फल प्राप्त करता है । इसके अलावा इच्छित वस्तुएं भी उत्पन्न कर सकता है और बचनसिद्धि भी प्राप्त करता है, ऐसा शास्त्र का कथन है ।

नियमित कंपन संख्या–युक्त ध्वनि मधुर एवं कर्णप्रिय लगती है, उसे 'नाद' कहा जाता है । इससे संगीत का मूल आधार नाद माना जाता है । नाद का सम्बन्ध सुगठित और नियमित कंपन–युक्त स्वर के साथ है । नाद ब्रह्म है और समग्र जगत नाद के अधीन है । इससे कहा जाता है कि विश्व की उत्पत्ति नाद के आधीन ही हुई है । इसलिये नाद साधना आवश्यक है । नाद की उपासना करना अत्यंत जरूरी बाबत है । आग्नाय (नाद) को आत्मसात् करनेवाले का मानना है कि जगत शब्द का परिणाम है । शब्द में अनन्य शक्ति है । बोला गया शब्द कभी व्यर्थ नहीं जाता । आन्दोलनों द्वारा वह हंमेशा गूंजता रहता है । तान्त्रिकों के मतानुसार प्रथम ध्वन्यात्मक सृष्टि की रचना हुई ओर उसके बाद पदार्थ सृष्टि रची गई । शास्त्रों ने ध्वनि को 'नाद' नाम देकर और उसे ब्रह्म कहकर उसकी उपासना करने की आज्ञा की है । मानव शरीर में नाद की उत्पत्ति अग्नि और प्राण के सहयोग से होती है । नाद शब्द 'नद्' धातु से बना है । 'नद्' धातु का अर्थ अव्यक्त ध्वनि होता है । 'नद्' धातु के दो अक्षरों के मिलने से नाद शब्द बना है । नकार का अर्थ प्राण और दकार का अर्थ अग्नि है ।

शरीर में नाद की उत्पत्ति के संदर्भ में पंडित सारंगदेव रचित 'संगीत रत्नाकर' में बताया गया है,

आत्मा विवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते मनः ।

देहस्थवह्निमाहन्ति से प्रेरयति मारुतम् ॥

ब्रह्म ग्रंथिस्थितः सोऽथक्रमादूर्ध्वदये चरन् ।

नाभिहस्कंठमूर्धास्येष्वाविभवियति ध्वनिम् ॥[1]

अर्थात् – जब आत्मा को वाचा के उपयोग की इच्छा होती है तब मन को वह प्रेरणा देता है । मन देहाग्नि को प्रेरित करता है । अग्नि वायु से कहता है तब ब्रह्म ग्रंथि वायु क्रमशः नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा और मुख–शरीर के इन पाँच स्थानों पर से पाँच प्रकार के नाद की उत्पत्ति होती है । इस नाद का सम्बन्ध स्वर के साथ होता है एवं स्वरों के माध्यम द्वारा भाव और रस की उत्पत्ति होती है ।

भारतीय वेदान्त शास्त्र सभी वस्तुओं की उत्पत्ति के लिये पाँच कुदरती तत्त्वों–अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु और आकाश को कारण रूप मानते हैं और इससे वर्ण, उच्चारण, आवाज़, ध्वनि अथवा शब्द यह आकाश का गुण है । आकाश अथवा शून्यावकाश को शब्द की उत्पत्ति के लिये प्रमुख स्थान माना जाता है । जहाँ – जहाँ शून्यावकाश हो, ऐसी तमाम जगहों में से स्वर अथवा आवाज़ की उत्पत्ति होती है । दो वस्तुओं के घर्षण से आवाज़ उत्पन्न होती है । क्योंकि आघात के कारण कंपन उत्पन्न होता है तथा वातावरण के शून्यावकाश के कारण मानव सुन सकता है और इसी से आकाश तत्त्व विशाल एवं शून्यावकाश युक्त है । आवाज़ की उत्पत्ति के लिये आकाश महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । आवाज़ में भी पञ्च तत्त्वों की विशेषता होती है और वह मानवीय तत्त्वों तथा गुणों के साथ जुड़ी हुई है ।पृथ्वी तत्त्व का गुण मानव को आशान्वित, उत्साहित तथा लाभ के प्रति उन्मुख करने का है । जल तत्त्व का गुण आरामदायक प्रगतिकारक तथा नशीला है । अग्नि तत्त्व का गुण उत्तेजना, भय, जागरुकता और प्रभावित करनेवाला है । वायु तत्त्व का गुण पृथ्वी के ऊपर और दूर ले जाने का है । जब कि आकाश तत्त्व का गुण शान्ति, समन्वय, आरोग्यकारक, विश्वासदायक, प्रेरणादायक, नशीला एवं पसंद पड़नेवाला है ।

1. वसंत / संगीत विशारद / पृ. 57

जल तत्त्व का गुण गिलापन, सूख जाना, स्नेह वगैरह भी है । जब कि अग्नि तत्त्व का मूल गुण ताप (गर्मी) देना, पकाना और पुनः सर्जन करना है । वायु तत्त्व का गुण गन्ध, स्पर्श, कंपन आदि है । पृथ्वी तत्त्व का मूल गुण आकार स्थिरत्व और घनत्व हैं । जब कि आकाश तत्त्व का मूल गुण अन्य चार तत्त्वों के गुणों में समाया हुआ है । इस प्रकार तमाम रूप से देखने पर लगता है कि आकाश स्वयं नाद एवं ब्रह्म है । नाद की एक शक्ति है, जिसमें से अनेक संभावनाएं उत्पन्न होती हैं । संगीत में उत्पन्न होती स्वर लहरों को समझने के लिये नाद योगी विशेष अभ्यास करते हैं । इस अभ्यास को 'नाद योग' कहा जाता है । नाद में समाई हुई दिव्य शक्ति मानव के मस्तिष्क में उत्तम स्पंदन उत्पन्न करती है, जिसके कारण मस्तिष्क में रही हुई गुप्त शक्यिाँ चेतनवंती बनती हैं । संगीत परा शक्ति है । उसके प्रयोग द्वारा शास्त्रीय संगीत उत्पन्न होता है । संगीत की परा शक्ति अपने अति सूक्ष्म रूप के साथ जिस माध्यम से पहुँचती है, उसे ध्वनियोग अथवा नाद योग कहते हैं । संगीत द्वारा मानव मस्तिष्क को शान्ति और विचारशून्यता अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्राप्त होती है । इसीलिये नाद योग को ध्यानयोग भी कहा जाता है और नाद रूपी स्वर द्वारा ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त होता है ।

नाद के लिये वैज्ञानिक कारण अनुसार दो वस्तुओं या पदार्थों के टकराने के फल स्वरूप जो ध्वनि उत्पन्न होती हैं, उसे नाद कहा जाता है । किन्तु संगीत उपयोगी नाद के बारे में यह कहा जा सकता है कि जो ध्वनि कर्णप्रिय हो और जिसे सुनते ही दिव्य आनंद प्राप्त हो, वह सच्चा आनंद है । ''संगीत समय सार'' में कहा हैं कि मानव शरीर स्थित कंठ प्राकृतिक रूप में नाद अर्थात् गीत के लिये उपयोगी ध्वनि निकास का सब से सहज एवं स्वाभाविक साधन है । इस से मानव शरीर से नाद और नाद से गीत की उत्पत्ति मानी जाती है । इस तरह गीत का आधार नाद और नाद का आधार मानव शरीर है । मानव शरीर के कंठ और मुख नाद से बने हुए स्वर और वाणी को गीत के स्वरूप में अभिव्यक्ति करते हैं । इसलिये शास्त्रों में गीत को स्वयं नादात्मक एवं वाद्य को नाद व्यक्त करनेवाला कहा जाता है ।

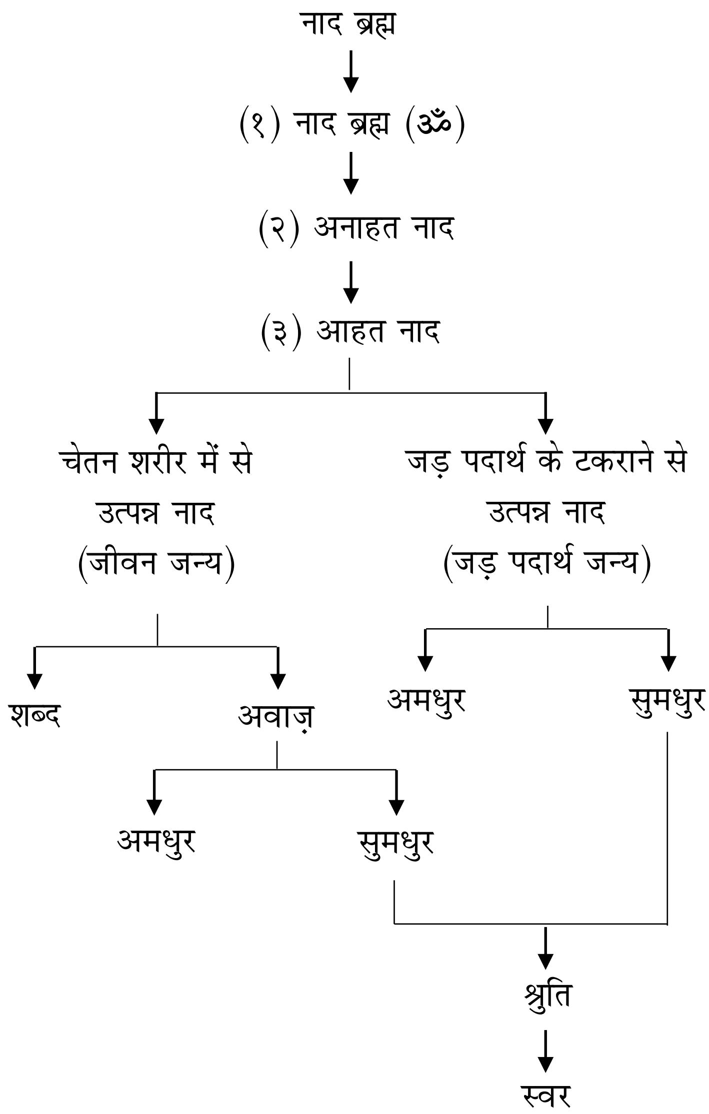

नाद शब्द का अर्थ 'न' मतलब प्राण और 'द' मतलब अग्नि किया जाता है। प्राण का मतलब स्थूल और सूक्ष्म वायु और अग्नि मतलब उष्णता (किसी प्रकार की गति) इन दोनों के संयोग से अथवा तो आघात से जो उत्पन्न होता है, वह नाद हैं । एक अन्य मतानुसार नाद शब्द में 'न' और 'द' ये दो अक्षर हैं । प्रथम नकार और द्वितीय दकार है । इसमें 'न' प्राणवाचक और 'द' अग्नि वाचक शब्द उत्पन्न करता है, जिसे नाद कहा जाता है ।[1]

नाद का पर्याय ध्वनि है । ध्वनि ही स्वर एवं राग के विकास के लिये मूल है । नाद, बिन्दु, स्वर और राग ये सब शरीर से उत्पन्न होते हैं । इसलिये मानव कंठ से निकलता 'शरीरज' अथवा 'गात्रज' सचेतन ध्वनि प्राकृतिक और स्वाभाविक होने के कारण प्रमुख है । ध्वनि के दो भेद हैं ।

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 40

(१) सांगीतिक ध्वनि (२) भाषागत 'पद' शब्द । जब प्राकृत कंठ ध्वनि के शुद्ध रूप से अपने तारत्व के गुण के कारण नीचे अथवा ऊँचे जाता है, तब वह संगीत के स्वरों का रूप धारण करता है तथा वही कंठ ध्वनि जब मुखादि अवयवों के प्रयोग से परिवर्तित होता है, तब भाषा के वर्णों के रूप में उच्चारित होते हैं । वर्णों के प्रयोग से ही पद (शब्द) बनता हैं । सांगीतिक 'स्वर' अर्थविहीन किन्तु भावात्मक होने के कारण अनुभूतिगम्य, अर्थयुक्त विश्लेषात्मक भाषा का पद होने से बुद्धिगम्य होता है । परंपरागत भारतीय संगीत में स्वर की चरमसीमा राग और पद की गेय रचनाएं काव्य के रूप में हुई हैं । सांगीतिक स्वरों का व्यवहार मानव कंठ और वाद्य दोनों से संभव हैं । जब भाषा शब्द के व्यवहार से और केवल मानवकंठ से ही संभव है । संगीत अपना स्पष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकता है, वैसा प्रभाव भाषा उत्पन्न नहीं कर सकती, इसी से भाषा का अन्त है, वहीं से संगीत का प्रारंभ हैं । किन्तु नाद की व्याख्या करने के लिये मानव के पास शब्द के सिवा अन्य कोई उपाय न होने से अतः नाद के अगम्य स्वरूप को बुद्धिगम्य बनाने के लिये नाद का एक कल्पित नाम तय किया गया । यह नाम ऐसा है कि उसने नाद के समग्र स्वरूप को अपने अंदर समा लिया हैं । इस विचार के बाद ही नाद को ओम् (ॐ) नाम दिया गया है । ओम् की तीन मात्राएं हैं – अकार, उकार, मकार । इन तीन मात्राओं को तीन पाद भी कहा जाता हैं । इसीलिये तो श्रुति कहती हैं : **पादाः मात्राः मात्राश्च पादाः।**

आचार्य गौड़पाद कहत हैं कि,

ओंकारः पादशो विद्यात् पादा मात्रा न संशयः ।

ओंकारः पादशो ज्ञात्वा न किंचिदपि विचिंतयेत् ॥[1]

– गौड़पादीय कारिका

अर्थात् ओंकार पद वाच्य आत्मा को मात्रा क्रम से अथवा पदक्रम से ही पहचानना चाहिए । ओंकार को पादक्रम से ही पहचान कर दृष्टादृष्ट की चिंता दूर हो सकती है । परमात्मा के उस विराट स्वरूप का विपुल ज्ञान सामान्य जीव की परिमित बुद्धि में नहीं समा सकता । अतः उसे पादशः के रूप में ही पहचानना चाहिये । अमात्र ब्रह्म को पहचानने के लिये उसकी मात्राओं को जानना आवश्यक है । द्वैतभाव की निवृत्ति द्वैत को जानकर ही हो सकती हैं । प्रपंचोपशम रूप शिवत्व की

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 42

उपलब्धि प्रपंच को जाने बिना असंभव हैं । विद्या द्वारा अमृत तत्त्व का लाभ भी तभी हो सकता है, जब अविद्या के रहस्य को मानव जान सके । अत: अपाद एवं अमात्र ब्रह्म ओंकार का ज्ञान उसकी मात्राओं को पहचान कर ही हो सकता है ।

- **प्रथम मात्रा**

'ओम्' की प्रथम मात्रा अकार है । यह अकार और कुछ नहीं हैं, किन्तु जागरित स्थानवाला वैश्वानर आत्मा ही अकार है । अकार के दो अर्थ हैं व्याप्ति और आदिमत्ता ।अकार समस्त वाणियों को व्याप्त कर स्थित है । ओंकार परम ब्रह्म का मुख्य वाचक नाम है । मांडुक्योपनिषद् का यह विशिष्ट मत हैं, परन्तु वास्तव में तो परम ब्रह्म का कोई नाम नहीं होता । क्योंकि वह वाणी का विषय ही नहीं है ।

वैश्वानर भी द्युलोक आदि समस्त स्थूल प्रपंच को व्याप्त कर स्थित हैं इसी व्याप्ति की समानता से वैश्वानर को अकार मात्रा कहा गया हैं । वैश्वानर और अकार दोनों आदिमान भी है । वैश्वानर चारों पादों में प्रथम पाद हैं और अकार भी समस्त वाणियों में प्रथम वाक् (वाणी) है । उसकी अभिव्यक्ति सभी वर्णों में प्रथम है इसलिये भी वैश्वानर को अकार कहा गया है । अकार को जानने का उपाय भी वही हैं, जो अर्थ में समाया हुआ है अर्थात् अकार मात्रा को जो सभी तरह से जान लेता हैं, वह समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है और सब श्रेष्ठ पुरुषों में प्रथम हो जाता है ।

- **द्वितीय मात्रा**

ओंकार की द्वितीय मात्रा उकार हैं । स्वप्न में अभिव्यक्त होनेवाला तैजस आत्मा ही उकार कहा जाता है । तैजस को उकार क्यों कहा जाता हैं ? उसमें दो हेतु हैं –(१) उत्कर्ष, (२) मध्यवर्ती । वैश्वानर से तैजस प्रपंच उत्कृष्ट होता है । क्योंकि वैश्वानर स्थूल शरीराभिमानी होने के कारण उत्कृष्ट गतिवाला हैं । वर्ण और ध्वनि की दृष्टि से भी उकार अकार से क्लिष्ट है । उकार का उच्चारण अकार को पिछे रख देता हैं । अकार की तुलना में उकार के तेज की मात्रा अधिक होती हैं । इसलिये उकार को तैजस कहा गया हैं । मध्यवर्तीत्व भी दोनों में समान हैं ।

जिस तरह अकार और मकार के मध्य में उकार स्थित है, उसी तरह वैश्वानर और प्राण के बीच में तैजस विद्यमान हैं । उकार को जानने का फल भी उत्कृष्ट हैं । उकार का ज्ञाता उत्कृष्ट ज्ञानवाला होता है तथा मित्र और शत्रु पक्षों में मध्यवर्ती अर्थात् अद्वेष्य होता है ।

➢ तृतीय मात्रा

सुषुप्ति स्थानवाला प्राज्ञ आत्मा मकार कहलाता है और यह मकार ओंकार की तृतीय मात्रा है । श्रुति दो हेतु (कारण) देती हैं (१) मिति (२) अपीति (लय)। मिति का अर्थ है नापना तथा अपीति का अर्थ हैं 'लय' । प्राज्ञ और मकार में मिति और अपीति की समानता है । प्राज्ञ ही वैश्वानर एवं तैजस को नापता है क्योंकि इन दोनों का प्रवेश होता है । जिस तरह प्रस्थ में अवादी अन्नों को तोला जाता है, उसी तरह प्राज्ञ पूर्वोक्त वैश्वानर और तैजस को नाप लेता है । वैश्वानर और तैजस का लय भी अन्त में मकार में ही होता है और फिर उसीमें उद्‌गम भी होता है । अकार और उकार को भी मकार नाप लेता है । क्योंकि मकार के आगे कोई मात्रा नहीं हैं, इसलिये अकार और उकार का प्रवेश मकार में भी होगा । मकार में लीन होकर अकार और उकार पुनः मकार से ही उद्‌भूत होगा । इसी मिति और अपीति की समानता से प्राज्ञ को मकार मात्रा कहा गया है ।(1)

ओंकार की तीन मात्राओं से सप्रपंच ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर प्रपंचहीन हो जाना चाहिए, क्योंकि प्रपंच का ज्ञान निष्प्रपंच ब्रह्म का ज्ञान कराने के लिये आवश्यक साधन है । ओम् आदि, मध्य और अंत भी है, वही सर्वव्यापी ईश्वर है, जो सभी के हृदय में स्थित है । वही अमात्र है और वही अनंत मात्र भी है । अमात्र ब्रह्म का ज्ञान भी ओंकार अक्षर से ही होता है क्योंकि मात्रा ओम् का लक्ष्य भी मात्राहीन स्थिति पर पहुँचने का होता है । व्यवहार में नाद के तीन भेद – मन्द्र, मध्य और तार माने गये हैं । हृदय में मन्द्र, कंठ में मध्य और तालु में तार (स्वर) का स्थान माना जाता है । यह भेद क्रमशः एक दूसरे से दुगुनी ऊँचाई पर स्थित है ।

नादेन व्यंजते वर्णः पदं वर्णात् पदाद्वचः ।

वचसा व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत् ॥(2)

– लक्ष्य संगीत

अर्थात् नाद के योग से वर्ण का उच्चारण होता है । वर्ण से पद या शब्द की सिद्धि होती है, पद से भाषा बनती है और भाषा द्वारा ही समग्र विश्व का व्यवहार चलता है और इसी कारण शास्त्रकारों ने कहा है, ॥नादाधिनम् जगत् सर्वम्॥ 'समग्र जगत नाद के आधीन है ।'

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 44
2. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 45

संगीत का संबंध नाद(आवाज़) से जुड़ा हुआ है क्योंकि नाद संगीत का प्राण है । नाद में ही संपूर्ण विश्व की परिकल्पना समा जाती है । इसी से नाद रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश का दर्शन किया जाता है ।

नाद और शब्द के प्रभुत्व से उत्पन्न समग्र ब्रह्मांड में रहते हुए जड़ और चेतन विश्व को समान भावना एकसूत्र में संगीत बाँधता है । संगीत ईश्वरीय वाणी (वाचा) है और इसीलिये वह स्वयं ब्रह्म अखंड और अद्वैत होने पर भी परब्रह्म और शब्द ब्रह्म ऐसे दो काल्पनिक रूप हैं । शब्द ब्रह्म को पूर्ण रूप से जान लेने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

''शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्ममधिगच्छति ॥''(1)

– ब्रह्म बिन्दूपनिषत्–२२

अर्थात् –शब्दब्रह्म को पूर्ण रूप से पहचान लेनेवाला, बिना किसी मुसीबत के, परब्रह्म को सरलता से प्राप्त कर लेता है ।

अध्ययन के बाद शोधछात्रा को यह ज्ञात हुआ कि, प्राचीन ऋषियों और योगियों ने 'नाद' को ब्रह्म का रूप माना हैं । उनके मतानुसार नाद निर्गुण ब्रह्म का सगुण रूप है । 'प्रणव' अथवा 'नाद' की आराधना से ब्रह्म की आराधना से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है । शब्द को आकाश का गुण कहा गया है । शब्द आकाश की तरह व्यापक माना जाता है । ''णद् अव्यक्ते शब्दे'' अर्थात् अव्यक्त या अस्पष्ट शब्द के अर्थ में णद् धातु से 'नाद' शब्द रूप से उत्पन्न होता है । इसीलिये नाद का अर्थ 'अव्यक्त ध्वनि' होता है । वर्ण, पद, वाक्य, स्वर ये सब उस अव्यक्त ध्वनि के ही रूप हैं । नाद (आवाज़) की उत्पत्ति दो तत्त्वों के संयोजन से दर्शायी गई है । वे दो तत्त्व प्राण और अग्नि हैं ।

चैतन्यं सर्वभूतानां विविक्तं जगदात्मना ।

नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे ॥(2)

अर्थात् – जो तमाम प्राणियों का चैतन्य रूप है, जो विश्व रूप से धारण है । ऐसा नाद कि जो अद्वितीय आनंद है, उसकी हम उपासना करते हैं ।

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 45
2. वसंत / संगीत विशारद / पृ. 56

प्राचीन काल से ही नाद ब्रह्म की उपासना के रूप में संगीत साधना का अनुसरण किया जाता है । संगीत साधना दिव्य है । क्योंकि उसके द्वारा सत्यं, शिवं और सुंदरं की अभिव्यक्ति होती है और साधक आत्म साक्षात्कार का लाभ प्राप्त करता है ।

न नादेन विना गीतं, न नादेन विना स्वराः ।

न नादेन विना नृत्यं, तस्मान्नादात्मकं जगत् ॥

नादरूप स्मृतो ब्रह्मा, नादरूपो जनार्दनः ।

नादरूपा पराशक्तिर्नादरूपो महेश्वरः ॥[1]

अर्थात् – नाद के बिना स्वर, गीत, वाद्य और नृत्य नहीं हैं । नाद के बिना समग्र विश्व का सम्पूर्ण व्यवहार संभवित नहीं हैं । क्योंकि वह नाद के ऊपर आधारित है । ब्रह्मा और विष्णु को नाद का स्वरूप माना जाता हैं । पराशक्ति माँ भगवती भी नाद रूप में है और स्वयं भगवान महेश्वर भी नाद रूप ही हैं ।

संगीत शब्द और नाद की उपासना द्वारा मानव के अंतर में पड़े सुषुप्त दैवी अंश को जागृत करने का प्रयास करता है और इसी उत्तम कारण से भारतीय शास्त्रीय संगीत विश्व के तमाम संगीत में हंमेशा अग्र स्थान रखता है । संगीत के दो मुख्य आधारस्तंभ हैं 'स्वर' और 'लय' । भारतीय संगीत में गायन तथा तन्तु और सुषिर वाद्यों में स्वर की प्रधानता हैं । जब कि अवनद्ध यानी घन वाद्यों में लय प्रधान हैं । लय संगीत को ताल के माध्यम द्वारा स्थायी, सुगम और लालित्यपूर्ण तथा अनुभूतिजन्य बनाता हैं । ताल को दर्शाने का माध्यम अवनद्ध वाद्य हैं । भारतीय संगीत में पिछले साड़े चार सौ से भी अधिक समय से तबले का उपयोग होता रहा हैं । इन वर्षों दरमियान तबलावाद्य का पूर्ण विकास जरूर हुआ हैं । वर्तमान युग में तबला संगीत का महाप्राण बन चुका हैं । गायन, तन्तुवाद्यों, सुषिरवाद्यों, नृत्य आदि में संगीत के साधन के तौर पर तबलों का भरपूर उपयोग होता रहा हैं । अन्य स्वरप्रधान वाद्यों की तरह तबले का स्वतंत्र वादन भी प्रचलित हुआ है । संगीत उपयोगी नाद के संदर्भ में तीन बाबतें महत्त्वपूर्ण हैं । (१) आवाज़ का बड़ा और छोटा स्वरूप, (२) आवाज़ की जाति अथवा गुण (३) आवाज़ का ऊँचा–नीचापन ।

---

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 46

१. आवाज़ का बडा और छोटा स्वरूप

एक ही आवाज़ को मनुष्य अपनी ज़रूरत के मुताबिक निम्न या उच्च स्वर से उच्चारण करता है । उच्च स्वर से उच्चारण की हुई आवाज़ दूर तक सुनी जा सकती है तथा निम्न स्वर से उच्चारण की हुई आवाज़ नज़दीक से ही सुनी जा सकती है । यह घटना नाद के स्वरूप की हैं ।

२. आवाज़ की जाति अथवा गुण

आवाज़ अपनी जाति के कारण अगर मनुष्य अथवा वाद्य की हो, तो वह सहज रूप से सुनी जा सकती है । एक ही आवाज़ शहनाई, सारंगी, वायोलीन और हार्मोनियम जैसे वाद्यों से निकलती हैं, किन्तु वह किसी वाद्य की है या मनुष्य की है यह आँखों से बिना देखे कान से सुनकर आवाज़ की जाति (प्रभाव) और गुण से पहचानी जा सकती है ।

३. आवाज़ का उच्च और निम्नपन

आवाज़ के आरोह-अवरोह का सम्बन्ध उसके एक सेकन्ड में होते आंदोलनों पर निर्भर हैं । स्वर के आंदोलन जितने ज्यादा होंगे, उतनी ही आवाज़ ऊँची हो सकेगी । आंदोलन जितने कम होंगे उतनी आवाज़ नीची होगी । यहाँ वह बात खास ध्यान में रखनी होगी कि नाद के ऊँचा या नीचापन का सम्बन्ध आंदोलनों की संख्या पर निर्भर हैं ।[(1)]

शोधकर्ता ने शोध के बाद यह जानकारी हांसील कि, सम्पूर्ण प्रकृति नाद के त्रिगुणात्मक स्वरूप को मान रही है और यह महातत्त्व नाद होने के कारण ही समग्र ब्रह्मांड टिक रहा है । पाँच तत्त्वों में नाद को महातत्त्व गिना जाता है । क्योंकि इन पाँच तत्त्वों के गुणधर्म वायु तत्त्व से बिलकुल अलग है मगर वे तमाम गुण आकाश तत्त्व के 'नाद' में देखन को मिलते हैं । पृथ्वी का घनत्व गुण नाद में 'घेराव' के रूप में और जल तत्त्व की स्निग्धता नाद की भावात्मकता में तथा अग्नि तत्त्व का ओज नाद के ओज तत्त्व मे व्याप्त है । वायु तत्त्व का गुण गति तो नाद में प्रथम से ही है और इसीलिये आकाश स्वयं नाद है और इसी कारण नाद पृथ्वी के सभी पदार्थों को प्रभावित करता है । मानव का शरीर भी इन पाँच महातत्त्वों से बना है और इसीसे वह (शरीर) नाद के आधीन है । आत्मा जब इस नाद में ध्यानावस्थित बने, उसे समाधि कहा जाता है । नाद शास्त्र के अनुसार प्रत्येक प्राणी

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 47

प्रकृति द्वारा निर्मित एक विशिष्ट स्वर रचना है । शरीर में अवस्थित आन्तरिक सप्त स्वरचक्रों का एक दूसरे के साथ सुसंवाद हो, उसके ऊपर ही मनुष्य की तंदुरस्ती का आधार हैं । तदनुसार हरएक व्यक्ति की स्वरराशि उसके रोग एवं तंदुरस्ती का कारण हैं । हरएक व्यक्ति का कंठ अलग अलग स्वर रखता हैं । शरीर में व्यक्ति की स्वर–राशि सम्बन्धित स्वरचक्र के असंवाद से ही मनुष्य रोग का शिकार बनता है ।

ऋषि मुनियों के अनुभवों से यह सिद्ध हो चुका है कि अन्य इन्द्रियों द्वारा जो सुख प्राप्ति होती है, उसकी अपेक्षा कर्णेन्द्रिय द्वारा निरंजन, निराकार तत्त्वों का जो अनुभव होता है वह अन्य आनंदों से अनेक गुना विशेष है और उसे दैवी आनंद कहा है । अनाहत नाद हृदय में से उत्पन्न होता है । हृदय में ईश्वरी तत्त्व का विशेष आविर्भाव होता है । आम आदमी के लिये आहत नाद की साधना भारतीय संस्कृति की परम भेंट हैं । यद्यपि वह साधना भी संस्कार एवं तप द्वारा ही सफल होती हैं । जब एक स्वर अन्य स्वर के साथ संवादिता साधता है तब पहला स्वर विशेष स्थूल, गंभीर, दीर्घ और अनुकरणीय बनता है । इस गंभीर, दीर्घ और अनुकरण करते स्वर में अपनी आत्मा के आनंद की छाया मानव को प्राप्त होती है । मानवीय आहत नाद का संगीत जैसे जैसे अनाहत नाद का विशेष अनुकरण करता जाता है, वैसे वैसे उसमें से दैवी आनंद की विशेष प्राप्ति होती है ।

1.3.1 नाद स्थान

नाद के उच्च और निम्नपन के आधार पर नाद को मन्द्र, मध्य और तार ऐसे तीन विभागों में वर्गीकृत किया गया हैं, जिसे नाद स्थान कहा जाता हैं । इन नाद स्थानों के हरएक स्थान में एक स्वर सप्तक मानकर मन्द्र स्वर सप्तक, मध्य स्वर सप्तक और तार स्वर सप्तक बनाये गये हैं, जिनके द्वारा मनुष्य सामान्य व्यवहार में बातचीत कर सकते हैं । ऐसी ही आवाज़ की ऊँचाई के सप्तक को मध्य सप्तक कहा जाता है । उससे नीचा मन्द्र स्वर सप्तक और ऊँचे सप्तक को तार सप्तक समझना चाहिए । इसका मतलब यह कि मन्द्र से दुगुना ऊँचा मध्य सप्तक और मध्य सप्तक से दुगुन ऊँचा तार सप्तक बनता हैं । गायन में ज्यादातर इन तीनों सप्तकों का उपयोग किया जाता है । तीन से ज्यादा सप्तकों का प्रयोग वाद्यों में ही देखने को मिलता है । उदाहरण स्वरूप हारमोनियम

तीन, सवा तीन, साढे तीन, पौने चार एवं चार सप्तकों में भी बनाये जाते हैं । इससे ज्यादा सप्तकों का प्रयोग ओर्गन तथा पियानों में देखने को मिलता हैं । पियानों में जो सात सप्तक बनाये जाते हैं, उनके नाम निम्न अनुसार है :[(1)]

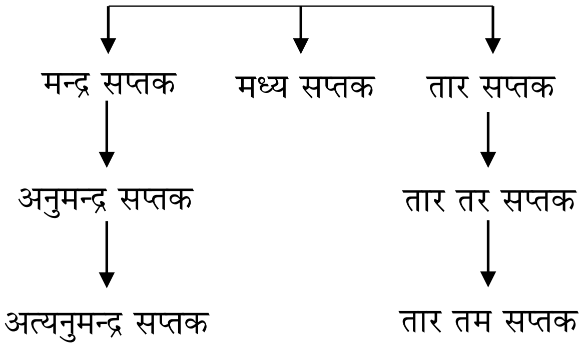

1.3.2 नादब्रह्म और सात स्वरों का आविर्भाव

भारतीय ऋषि मुनियों ने अपने अनुभव के आधार पर आध्यात्मिक बाबतों को आत्मसात् की हैं । परमब्रह्म परमात्मा का जब सृष्टि के आदि काल में प्राकट्य हुआ, तब वह शब्दब्रह्म या नादब्रह्म के रूप में अज्ञात से विज्ञात हुआ । भारतीय तत्त्वज्ञानियों के मतानुसार प्रकृति और पुरुष का जब समागम हुआ तब उसके स्पंदन से एक ध्वनि उत्पन्न हुई, जिसे शब्दब्रह्म या नादब्रह्म की संज्ञा दी गई । इसी स्पंदन को ही ॐकार, प्रणव, अनाहत नाद, सत्यब्रह्म, ज्ञानब्रह्म आदि कहा जाता है । भारतीय ऋषि–मुनियों ने सत्य के ज्ञान के साथ समाधि अवस्था में नादब्रह्म के स्वरूप का अनुभव किया । इस अनुभव से उत्पन्न हुए सत्य एवं चेतना के स्पंदन को व्यक्त करने के लिये कोई भाषा, शब्द, अक्षर या व्याकरण न था । इसलिये इस प्रकार के ज्ञान को विस्तृत रूप में समझने के लिये एक काल्पनिक भाषा के आधार पर भारतीय ऋषि–मुनियों ने ज्ञान की पुस्तकों के रूप में वेद प्रकट किये । इस सत्य ज्ञान को भगवान श्री कृष्ण ने गीता में धर्म कहा और इस धर्म को मानवीय जीवन में गूंथने के विभिन्न साधन भी समझाये । जिनमें ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग आदि का समावेश होता है ।

वैज्ञानिक इस बात को स्वीकारते हैं कि समस्त विश्व के अणु गति कर रहे हैं । कोई जड़ हो या चेतन वह सब नादब्रह्म एवं स्पंदन की थरथराहट या कंपन का ही परिणाम है, जिसका उद्‌भव

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 49

प्रकृति और पुरुष के मिलन से हुआ है । इस नाद के कंपन (थरथराहट) ॐकार के रूप में हुआ है वह ऊँची या नीची अर्थात् आरोह–अवरोह के रूप में हुआ । प्रकृति की सीमा में जो रिक्त स्थान थे, उस अंतर को भारतीय तत्त्वज्ञानियों ने सप्त स्वरों में विभाजित कर आरोह–अवरोह के रूप में प्रस्तुत किया । वह निम्न अनुसार है ।

आरोह : सा रे ग म प ध नि सां

अवरोह : सां नि ध प म ग रे सा

शोधकर्ता को शोध दरम्यान यह ज्ञात हुआ कि, 'नादब्रह्म' जिसे मूल स्पंदन कहा जाता है, उसकी संगीत लहरी से वर्तमान युग में भी समग्र विश्‍व झूम उठता है । नाद संगीतमय है । उसमें ज़रा–सी भी रूकावट आ जाने पर बेसूरा लगने लगता है । प्राणों की गति में थोड़ी–सी अड़चन आने से मानव को जो अनुभव होता है, वैसा ही अनुभव संगीत स्वर बेसूरा हो जाने से महसूस किया जा सकता हैं । स्वर और ताल प्रकृति और पुरुष के रूप हैं । उसका आधार सत्य या पुरुष है तथा विधान का आधार प्रकृति है । ज्ञानयोग में जैसे आत्मा की अमरता ज्ञान द्वारा लक्षित की जाती है उसी तरह संगीत में भी नादब्रह्म की अमरता को ध्यान में रखकर साधना की जाती है । सात स्वरों के रूप में गान की सात भूमिकाओं को सप्त ऋषियों का रूप मानकर साधना की जाती है । ॐ भूः स्वः महः जनः तपः और सत्यं के नाम से क्रमशः 'सा रे ग म प ध नि सां' के रूप में देखकर साधना की जाती है । साधना द्वारा ऐसा स्पष्ट हो जाता है कि जिसे अधिष्ठान या आधार प्रारंभ में था वही अन्त में भी रहा ।[(1)]

जिस प्रकार सांख्य योग में आत्मा की अमरता तथा एकता के ज्ञान को लेकर साधना की जाती है, उसी प्रकार इस संगीत साधना में भी प्रत्येक स्वर की अमरता और नाद ब्रह्म के सम्बन्ध को ध्यान में रखकर साधना होती है । संगीत साधना से सिद्ध होता है । इस साधना द्वारा मन और चित्त की वृत्तियों के ऊपर नियंत्रण होता है तथा साधक अन्त में समाधि अवस्था तक पहुँच जाता हैं ।

अन्तर संवेदन की भाषा, स्वर, लय और अभिनय से ही समझी जा सकती है । सुख, दुःख, हर्ष, शोक, आवेग, उद्वेग, राग, द्वेष आदि हृदय की उर्मियाँ भाषा से नहीं, बल्कि स्वरों से ही पहचानी

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्‍वर / पृ. 56

जाती हैं और स्वरों से ही निश्चित होती हैं । एक ही शब्द के भिन्न भिन्न स्वरों के उच्चार के कारण अर्थों की कितनी विविधता उत्पन्न होती है यह बात अनुभवजन्य हैं ।

'हँ' कार अलग अलग स्वरोच्चार से कितने ही अर्थ बनते हैं । प्रश्न, आश्चर्य, हकार, नकार, हाश, हताशा, स्वीकार, व्यंग, अस्वीकार, मज़ाक आदि भावों की अभिव्यक्ति केवल स्वर भेद, उच्चार भेद और अभिनय भेद के ही परिणाम हैं । संगीत की, स्वराभिनय की भी ऐसी ही विशाल भावसृष्टि हैं । भाव जगत् और स्वरसृष्टि के सर्जन में स्वर महत्त्व का योगदान देता हैं । स्वर, लय, अभिनय से भावनिरूपण, ऊर्मि की अभिव्यक्ति सरलता और सहजता से साधी जाती है ।

संगीत ऋषि पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रयत्नों से संगीत के सात स्वर अधिक स्पष्ट हुए हैं । उन सात स्वरों की श्रुति इत्यादि तथा कोमल तीव्र स्वर मिलकर एक सप्तक के अन्तर्गत (२२) बाईस श्रुति स्वीकार्य बनी हैं । ये सभी नाद उनके सप्तक भेद, उच्चार भेद, श्रुत्यन्तर, स्वरान्तर, संवादान्तर, अनुवादी अन्तर तथा विवादी अन्तर के भेद से भिन्न भिन्न भाव उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं ।

शोधकर्ता ने यह जाना कि, इस प्रकार गति अथवा लय संगीत का सबसे पहला प्रमुख तत्व है । गति केवल संगीत के लिये उपयोगी नही है अपितु समस्त जीवन पर भी अवलम्बित है, चेतना गति का प्रतीक है और चेतना शून्य वस्तु कल्पनातीत है । जो वस्तु स्थिर प्रतीत होती है वह भी वैज्ञानीक दृष्टि से गतिमान है । विज्ञान–पहाड़ो में कंपन तथा पत्थरो में धड़कनों का अनुभव करता है । कंपन न केवल मानव हृदय में है अपितु शरीर के कण–कण में भी सदैव कंपित होता है । नृत्य के पश्चात भी यह गति बन्द नही होती । उपरी धड़कन रूक जाती है किन्तु आन्तरिक धड़कन चलती रहती है, जो गति का ही कारण है । इस प्रकार सारे विश्व में चेतना का साम्राज्य फैला हुआ है । यह चेतना का मूल आधार गति है जो अपने शाश्वत नियमों के विधान में बंधी है ।

नियमित गति लय है जो प्रबल–अबल की भावना की भी जननी है । गति का यह स्वरूप पूर्णरूप से संगीत में भरा हुआ है । उसी से संगीत के आरोह–अवरोह स्वर समूहों की गति अखण्ड चलती रहती है ।

संगीत का दूसरा तत्व है स्वर समूह, धुन विशेष जिसमें प्रकृति का व्यापक स्वरूप परिलक्षित होता है । वृक्षों में पत्तों के सूख जाने पर हरे पत्ते लहलहा उठते है, पर्वतों पर हिमपात होता है और फिर वह ग्रीष्म में जल बन कर बह जाता है । समुद्र की भाप अपने आप मेघ का रूप धारण कर धरती को सींचती है और फिर नदी के रूप में बहते हुए समुद्र में पुनः जा मिलती है । यह सभी वस्तुओं में हम जिस प्रकार एक का उतार और दूसरे का चढाव अनुभव करते हैं उसी प्रकार स्वरों में भी आरोह–अवरोह के रूप में यह क्रम विद्यमान रहता है । जिस प्रकार किसी प्रदेश में कई पर्वत मालाएँ होती है, जिसमें चढ़ाव तथा उतार होता है, कहीं उसमें नदी का वेग है तो कहीं छोटे स्थित ताल–तलइयाँ है कही सूरंगे है तो कहीं वृक्षो की पत्तियाँ खड़ी है, उन वृक्षों की डालियाँ सुन्दर मोड लेती, कहीं नीचे कहीं उपर की और उठती दिखायी पड़ती है , कहीं दूर तक सपाट मैदान है उस पर कहीं–कहीं दूब बिसरी पडी है , जो हवा के साधारण झोंकों से उहलादित हो उठती है । ठीक उसी प्रकार हमारे संगीत में इन सभी अनुभूतियों को व्यक्त करता हुआ प्रकृति जन्म आनन्द को अपने विशाल स्तर समुदाय में समेट कर विश्व को विभोर कर देता है ।

भारतीय मनिषियों ने ह्दयगत भावों के उद्धाटन का सफल साधन मानते हुए उसे धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय भी मानते हैं । अर्थात् शारंगदेव संगीत की महत्ता का वर्णन करते हुए अपने ग्रन्थ "संगीत रत्नाकर" के प्रथम स्वराध्याय श्लोक २६ (छब्बीस) से लेकर ३० (तीस) तक में वर्णन किया है और संगीत को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिये उपयुक्त माना है और कहा है कि कला का अंतिम लक्ष्य भौतिक संसार से उपर उठकर ऐसी मधुमति अवस्था की प्राप्ति करना है जिसमें भौतिक द्वन्दों की सत्ता ही विनिष्ट हो जाये ।

भारतीय विद्वानों ने संगीत को ह्दयगत भावों के उद्धाटन का एक सबल साधन माना है । प्राणी मात्र का रूदन चितकार ओर हास्य इत्यादि क्रियाओं से जनित ध्वनियों निर्वाद, निश्ववाद एवं अन्य विचारित रूप से सदा एक जैसी रहती है । भिन्न भावों को प्रकाशित करने वाली ये ध्वनियाँ संभवतः संगीत के उत्पत्ति में मूल हेतु है ।

मानव जीवन का चरम लक्ष्य आत्म लाभ है । मानव जीवन की सार्थकता इसी आत्मोलब्धि में समझी जाती है । उपनिषदों में आत्मा का निर्माण पंच कोशो से बताया गया है जिसमें अन्नमय,

प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय । प्रथम दो कोष्ठों जीव, जन्तुओं में सामान्य रूप से उपलब्ध है । शेष तीन मानव जाति की सहज विभूति है । यह पांच कोशो में आनन्दमय कोश की महत्ता सर्वाधिक है । परमतत्व का साक्षात्कार इसी आनन्दमय कोश का कार्य है और यह कोश का माध्यम संगीत है । इसलिए स्वर की व्याख्या 'स्वतः रंजयति इति स्वर:' की गयी है । इस बात की सत्यता संगीतकार रसास्वादक ही समझ सकता है । आनन्दकोश की प्राप्ति के लिये संगीत को ही माना गया है क्योंकि संगीत ही शब्द ब्रह्म और परब्रह्म दोनों रूपों में प्रस्थापित है । जहाँ ब्रह्म सम्बन्ध आता है वहाँ शून्यावकाश होकर प्राण तत्त्व ईश्वर हो जाता है ।

1.4 ध्वनि

संगीत की उत्पत्ति ध्वनि अथवा नाद से हुई हैं । मानव के विकास के साथ साथ ध्वनि में नियमितता आने लगी और उसका भी विकास हुआ । मानव अपना भाव ध्वनि द्वारा व्यक्त करता था और कालक्रमानुसार अभिव्यक्ति में से भाषा और शब्द का जन्म हुआ । उसके द्वारा दु:ख, सुख, शोक, आनंद और अनुभूति व्यक्त करने का माध्यम उत्पन्न हुआ । यों ध्वनि मानव की भावाभिव्यक्ति का मजबूत साधन बना और उसके द्वारा भाषा के बिना भी भाव संचार शक्य हआ । ध्वनि जैसा अत्यंत संवेदनशील अभिव्यक्ति का माध्यम समग्र जगत में दूसरा कोई अब तक प्राप्त नहीं हुआ । मानव की ज्ञानेन्द्रिय कान और आँख बहुत ही महत्त्व की हैं । मानव इन दो इन्द्रियों द्वारा उसे सुन और देख सकता है । मानव को ईश्वर की ओर से मिली अन्य एक महत्त्वपूर्ण भेंट यह आवाज़ है । मानव के मन में उत्पन्न होते सब भावों को व्यक्त करने के लिये ध्वनि या आवाज़ से ज्यादा उत्तम साधन और कोई नहीं हैं ।

वैज्ञानिकों ने ध्वनि की अलग-अलग व्याख्याएं दी हैं ।

१. ध्वनि मतलब यांत्रिक तरंग ऊर्जा, जिसे मानव कान द्वारा सुन सकता है ।

२. कान की संवेदना को ध्वनि कहते हैं ।

३. सख्त या नरम पदार्थ, द्रव्य या घट्ट पदार्थों के संचरण से उत्पन्न होती अदृश्य सूक्ष्म तरंगों को ध्वनि कहा जाता है । उसे देखा जा सके या न देखा जा सके, उसे सुना जा सके या न सुना जा सके, किन्तु संचरण प्रक्रिया 'ध्वनि' है ।

४. ध्वनि एक ऐसी तरंग है, जो मानव के कान तक पहुँचती है, जिसके द्वारा मानव के कर्ण पटल में कंपन उत्पन्न होता है और इस कंपन का ज्ञान मानव के दिमाग में एकत्र होता है और उसे ध्वनि की अनुभूति या ज्ञान कराता है, जो ध्वनि या ध्वनि तरंगें हैं ।(1)

ध्वनि निर्माण भौतिक जगत की घटना हैं । किसी भी वस्तु के ऊपर हवा या चोट लगने से घर्षण उत्पन्न होता है, तब उसमें भर्ती या कंपन पैदा होता है और वह कंपन, स्पंदन या आंदोलन का रूप धारण करता है । जब किसी वस्तु में कंपन उत्पन्न होता है, तब उसमें हवा के माध्यम से उसमें तरंग या लहर पैदा होती है और यह लहर मानव के कान तक पहुँचती है और उसके बाद ध्वनि की अनुभूति होती है । हवा में उत्पन्न तरंगों में से कुछ तरंगों को सुना जा सकता है तो कुछ तरंगों को नहीं सुना जा सकता । उसका मतलब यह नहीं हैं कि प्रत्येक ध्वनि में कंपन और आवाज़ होती हैं । ध्वनि का छोटापन–बड़ापन या ऊँचापन–नीचापन आदि ध्वनि स्रोत द्वारा उत्पन्न कंपन पर आधार रखता है । अलग–अलग कंपन से अलग अलग ध्वनि उत्पन्न होती हैं । जिनमें से कुछ ध्वनियाँ मानव के लिये कर्णप्रिय एवं उत्साहित करनेवाली होती हैं, तो कुछ ध्वनियों से मानवमन और दिमाग त्रस्त हो जाता है । इन घटनाओं पर से ध्वनियों के दो भेद किये जाते हैं ।

१. संगीतात्मक ध्वनि २. कोलाहल (बिन उपयोगी आवाज़)

१. संगीतात्मक ध्वनि

जिस ध्वनि को सुनकर मानव का मन प्रसन्न होता है और शांति प्राप्त करता है, जो सुनने पर कान को मीठा (अच्छा) लगता है और सुख प्राप्त होता है; वह ध्वनि सुस्वर है । इस ध्वनि में कंपन नियमित, अटूट एवं आवर्तनयुक्त होती है । प्रत्येक ध्वनि संगीत का स्वरूप नहीं है ।

---

1. सिंह, ललित किशोर / ध्वनि और संगीत / पृ. 40

इस कारण ध्वनि को संगीत का रूप देने के लिये संगीत में स्वर संख्या और ध्वनि की कंपन संख्या निश्चित की गई है एवं इसी कारण वह सांगीतिक ध्वनि कर्णप्रिय बनती है ।

२. कोलाहल (बिन–उपयोगी आवाज़)

अनियमित कंपन और अनावर्ती प्रक्रिया के अभाव के कारण उत्पन्न होती हुई ध्वनि कोलाहल एवं बिन उपयोगी ध्वनि कहलाती है । उसकी तीव्रता में अचानक वृद्धि होने के कारण उसमें कर्कशता उत्पन्न होती है, जो मानव के मन और दिमाग के लिये असह्य होने से सुनने में अप्रिय लगती है ।

ध्वनि विज्ञान ने इस प्रक्रिया को चार कक्षा में विभाजित किया है । (१) बोलना, (२) सोचना, (३) देखना, (४) न देखना, न सुनना या न सोचना । इन चार तबक्कों के बाद जो अन्तिम तबक्का मतलब जिसमें उपर्युक्त चार तबक्कों पैकी कुछ नहीं हैं, वह ध्यान है ।

1.5 शास्त्रीय संगीत की गायन शैलियाँ

भारतीय संगीत में गायन शैलियों के विभिन्न प्रकार समय–समय पर प्रचलित रहे हैं । वैदिक काल में ऋक्, पाणिका और गाथा जैसे गायन शैली के बाद भरत पूर्व काल में मुद्रक, अपरान्तक, प्रकटी आदि गायन शैली प्रचलित थी । भरतकाल में ध्रुवा गायन–शैली का सर्वाधि महत्त्व था । यह गायन शैली भरतकाल से ई. ९–१० तक लोकप्रिय थी । मतंग काल (ई. ०८) तक देशी संगीत में असंख्या प्रबंधों का निर्माण हो चुका था । इसमें से कुछ के नाम कन्द, आर्या, द्विपदी, त्रिपदी, चतुरंग, मातृका, वस्तु हंसपद इत्यादि । ये गायन शैलियाँ रत्नाकर–काल तक विभिन्न प्रदेशों मे प्रचलित रहें ।

शोधकर्ता को शोध समय यह जानकारी हांसिल हुई कि, पं. शारंगदेव ने अपने ग्रंथ में ७५ प्रकार के प्रबंधों या गायन–शैलियों का वर्णन किया है । इस में 'सालगसूड' नामक प्रबंध विशेष प्रचार में थे । प्राचीनकाल के पश्चात् मध्य तथा आधुनिक काल के प्रबंध या गायन–शैलियों के अंतर्गत ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना, गजल, भजन आदि अनेक गायन शैलियाँ आती है ।

पंडित शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर में प्रबन्ध का निरूपण इस प्रकार से बताया गया है ।

- गीत (रंजक स्वर समूह)
  - राग तत्त्व
  - गीत तत्त्व (धातु रचना नियम)
    - गाधर्व (मार्गी संगीत)
    - गान (देशी संगीत)
      - निबद्ध (प्रबंध, वस्तु, रूपक)
      - अनिबद्ध (आलिप्तगान)

यह शारंगदेव कृत प्रबंध का निरूपण के शोध दरम्यान शोधकर्ताने यह कोष्कट बनाने का प्रयास किया और यह माहिती भी एकत्रित की है जैसे की, भारतीय शास्त्रीय संगीत में गायन की अनेक विद् पद्धतियों का उत्कृष्ट खज़ाना उपलब्ध है । प्रागैतिहासिक काल से स्थल और काल प्रमाण के आधार पर भारतवर्ष में गायन भी विशिष्ट पद्धतियों का विकास हुआ । हरेक गायन पद्धति अपनी प्रस्तुतीकरण की विशेषता के कारण और परम्परागत अभ्यास और शैली के साथ प्रस्तुत हुई है । इन गायकीयों में ऐतिहासिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की झांकी मिलती है । प्राचीन काल के संगीत जगत में गायन के लिये गीतीयों, ध्रुवा एवं प्रबन्ध शब्द का प्रयोग होता था । प्रबन्धों का अनेक विश्लेषण ग्रन्थकारों की दृष्टि से पं. मतंगकृत बृहदेशी, पं.नान्यदेव कृत भरतभाष्यम्, पं. शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर एवं कुम्भकृत संगीतराज जैसे ग्रंथो में प्रर्याप्त मात्रा में विस्तृत चर्चा की गयी है । परन्तु भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में प्रबधों का उल्लेख नहीं मिलता । नाट्यशास्त्र के बत्तिसवें अध्याय में ध्रुवा शब्द का वर्णन गायन के लिये मिलता है जिसे हम देशी प्रबधों का पूर्व नाम दे सकते है । ध्रुवा गान का संबध नाट्यशास्त्र में नाट्य के प्रयोग के साथ जुड़ा हुआ है । नाटकों के अंतर्गत प्रयोग किये जानेवाले गीतों को शास्त्रीय नियमानुसार ध्रुवा कहते थे । सिर्फ भरत नाट्यशास्त्र में ही ध्रुवा गान का उल्लेख मिलता है; तत्पश्चात् संगीतरत्नाकर बृहदेशी संगीतराज में ध्रुवा गान का वर्णन नहीं मिलता । वहाँ देशी प्रबन्धों का उल्लेख है, जब कि नान्यदेव कृत भरतभाष्य में ध्रुवा और देशी प्रबन्ध दोनों का उल्लेख मिलता है । स्वर, ताल और पद (काव्य) इन तीनों का समावेश प्रबन्ध

में होता है । इसी कारण से स्वर, ताल एवं शब्द युक्त रचनाओं को प्रबन्ध कहा गया है । आधुनिक बंदिशे अथवा चीझ प्रबन्ध के अन्तर्गत आते है । इनमें स्वर रचना, ताल रचना एवं पद रचना यह तीनों दिखाई देते हैं ।

गांधर्व गान अर्थात् मार्गीय संगीत में स्वर, ताल और पद तीनों का समावेश है । यह संगीत वेदों के जैसे ही अपुरूषेय है और गान पुरूषेय है । अर्थात् मानव के द्वारा रचा गया है इसीलिये वह देशी संगीत अंतर्गत आता है । गान के दो प्रकार बताये गये है । उसमें निबद्ध गान और अनिबद्ध । अनिबद्ध गान के ताल रहित स्वरों को आलाप कहते हैं । निबद्ध गान में तालबद्ध होता है । उसीको प्रबन्ध कहते है ।

शास्त्रों में निबद्ध गान को तीन प्रकार में विभक्त किया गया है । इसके अन्तर्गत प्रबन्ध, वस्तु, रूपक आता है । इन तीनों में प्रबन्ध का प्रचलन सबसे अधिक है । प्रबन्ध का शाब्दिक अर्थ देखें तो प्र + बन्ध । अर्थात् जो भी गेय रचना है उसको बन्धन के साथ सुन्दरता से प्रस्तुत करना ही प्रबन्ध है । इसी प्रकार प्रबन्ध विविध अंगो से निबद्ध होना आवश्यक हैं । पंडित मतंग मुनिने सभी प्रबन्धों को देशी प्रबन्धों के अन्तर्गत माना है । परन्तु शारंगदेवने प्रबन्धों को तीन प्रकार में विभाजित किया है । (१) सूड प्रबन्ध (२) आलिक्रम प्रबन्ध और (३) विप्रकृण प्रबन्ध । इन तीनों को मिलाकार प्रबन्धों की संख्या ७५ मानी गयी है ।

1.5.1 प्रबन्ध के धातु

शास्त्रकारोंने प्रबन्ध के चार धातु एवं छः अंग बताये हैं ।

धातु के नाम : (१) उद्ग्राह (२) ध्रुव (३) मेलापक (४) आभोग ।

अंगो का नाम : (१) स्वर (२) विदुर (३) पद (४) तेनक (५) पाट (६) ताल ।

(१) उद्ग्राह

प्राचीन काल की कोई भी रचना में अर्थात् प्रबधों के अंतर्गत ध्रुव और उदग्राह का होना आवश्यक होता था । ध्रुव को आधुनिक काल की बंदिशों का स्थायी कह सकते है । प्राचीन काल में ध्रुवा के पहले जो गाया जाता था उसे उद्ग्राह कहते थे । वर्तमान युग में स्थायी के पूर्व आलाप

के अतिरिक्त कुछ भी नहीं गाया जाता । लेकिन उस समय जो उद्ग्राह गान गाया जाता था वह निबद्ध था । कालान्तर में उसका प्रयोग समाप्त हो गया है ।

(२) ध्रुव

गीत का जो अंश जिसे गीत के बीच में दुहराया जाता है उसे ध्रुव कहते है । आधुनिक समय में ध्रुव के स्थान पर स्थायी शब्द का प्रयोग होता है । उद्ग्राह के गाने के पश्चात् ध्रुव का गान होता था । जब उदग्राह का प्रचलन समाप्त हो गया तब ध्रुव से ही प्रबन्ध का गान प्रारंभित होने लगा ।

(३) मेलापक

उद्ग्राह और ध्रुव को मिलानेवाले खंड को मेलापक कहते हैं । मेलापक अर्थात् मिलाना । उद्ग्राह और ध्रुव को मिलाकर जो गायन बनता है उसे मेलापक कहते है ।

(४) आभोग

प्रबन्ध के अंतिम भाग को आभोग कहते थे । आभोग अर्थात् प्रबन्ध की समाप्ति । यह चार अंग को मिलाकर प्रबन्ध का प्रादुर्भाव होता था । प्रबन्ध में आवश्यक तौर पर चारों चीझों को गाया जाता था । आधुनिक युग में ख्याल गायन की रचना में भी प्रबन्ध के संपूर्ण तत्त्वों को प्रस्तुत किया जाता है ।[1]

1.5.2 प्रबन्ध के अंग

(१) स्वर

बिना स्वर के सांगीतिक प्रवृति निरर्थक हो अर्थात् प्रबन्ध को गाना यानि स्वरों का होना आवश्यक है । इस लिये प्रथम क्रमांक में अंग के अंतर्गत स्वर का स्थान सुनिश्चित किया गया है ।

(२) विरूद

संगीत रत्नाकर में 'विरूद गुण गान' कहा गया है अर्थात् गान में गुणात्मक तत्त्व होते है । उसे विरूद कहते हैं । जिस नाटकों के गीतों में देवी देवताओं पात्र के संबंध में जो वर्णन होता है उसे ‘विरूद’ कहते हैं ।

---

1. पटेल, चिंतन / उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत ना अप्रचलित रागोंनुं अध्ययन / महा शोधनिबंध / ओगष्ट – 2010 / पृ. 36

(३) पद

पद अर्थात् पद (कविता) रचना के शब्दों के द्वारा नायक–नायिका गुण गना करते है उसे पद कहते हैं ।

(४) तेनक

तेनक अर्थात् मंगलकारी वाक्यों अथवा शब्दों के प्रयोग जैसे 'हरि ॐ' हरे कृष्ण आदि को 'तेन' अथवा 'तेनक' कहते हैं ।

(५) पाट

पाट अर्थात् ताल वाद्य के अंतर्गत आनेवाले वादनयुक्त वर्ण समूह को 'पाट' कहते है ।

(६) ताल

प्रबन्ध रचनाएँ तालबद्ध होना आवश्यक है । निश्चित ताल रचना में ही प्रबन्ध को गाया जाता था । उपर्युक्त छः अंगो के विवरण से स्पष्ट होता है कि विरूद पर एवं तेन पद कविता से संबंधित है । स्वर तो स्वतः उपस्थित है एवं ताल पाट ये दोनों प्रबन्ध निबद्धता के लिये प्रायोजित है ।(1)

1.5.3 प्रबन्ध के प्रकार

अंगो की दृष्टि से प्रबन्धों के दो, तीन, चार, पांच और छः प्रकार मिलते है किंतु अंगो की दृष्टि से प्रबन्धों के पांच प्रकार माने गये है ।

१. मेदिनी अथवा श्रुति २. आनंदिनी अथवा नीति ३. दिपनी अथवा सेना

४. भाविनी अथवा कविता ५. तारावतल अथवा चम्पा

(१) मेदिनी अथवा श्रुति

यह जाति के प्रबन्ध में छः अंग जिसमें स्वर, विरूद, पद, ताल, तेन और पाट आते हैं । छः अंगो के मिश्रण से मेदिनी प्रबन्ध की रचना होती है ।

(२) आनंदिनी अथवा नीति

यह प्रबन्ध में पांच प्रकार के अंग मिश्रित होते है ।

---

1. पटेल, चिंतन / उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत ना अप्रचलित रागोंनुं अध्ययन / महा शोधनिबंध / ओगष्ट – 2010 / पृ. 34

(३) दिपनी अथवा सेना : यह जाति के प्रबन्ध में चार प्रकार के अंग मिश्रित होते है ।

(४) भाविनी अथवा कविता : इसमें तीन प्रकार के अंगों का मिश्रण होता है ।

(५) तारावली अथवा चम्पा : इस प्रबन्ध प्रकार में दो अंगो का मिश्रण होता है ।

सभी प्रबन्ध प्रकारो में स्वर और ताल अंगों का होना आवश्यक है । संगीत रत्नाकर, संगीत समयसार और इन ग्रन्थों के बाद के ग्रन्थों में तीन प्रकार के प्रबन्ध मिलते है ।(1)

1.5.4 ध्रुपद गायन की रचना एवं शैलियाँ

ध्रुपद की मध्ययुगीन शैली पर प्रकाश डालनेवाला सर्व प्रथम ग्रंथ राजामानसिंह कि "मानुकुतूहल" नामक रचना है इसके अनुसार यह गीत देशी भाषा में होता है , इसकी चार पंक्तियाँ होती है और यह सभी रसो में निबद्ध होता है । सूरदास, नंददास, परमानंददास जैसे अष्ट छाप संगीतज्ञो के ध्रुपदों के देखने पर इसके विषय की विविधता स्पष्ट हो जाती है । अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फज़ल के अनुसार ध्रुपदो का विषय गुणी एवं वीर व्यक्तियों की प्रशंसा भी रहा है । तानसेन जैसे दरबारी गायक की अनेक कृतियाँ अपने आश्रय दाता के गुणों का वर्णन करती पाई जाती है । ई. १८वीं सदी के संगीतज्ञ भावभट्ट के अनुसार ध्रुपद की भाषा संस्कृत अथवा मध्यदेशीय हिन्दी हो सकती है और इसका विषय श्रृंगार प्रधान होता है । इसके पद रागालापों से बद्ध होते है । आज उपलब्ध ध्रुपदों में ईश्वर भक्ति वीर गाथाएँ तथा नायक नायिका भेद विषय के रूप में पाये जाते है । ध्रुपदों का भावक्षेत्र विस्तृत है । जीवन के सभी पक्षो एवं भावों की विविधता इस गीत की प्रमुख विशेषता है ।

मध्यकालिन ध्रुपदों के तीन खण्ड होते थे जिन्हे 'धातु' अथवा 'तुक' कहा जाता था । इनके क्रमशः नाम थे – उदग्राहि, ध्रुवक और आभोग इन्हीं को कालक्रम से स्थाई, संचारी तथा आभोग कहा जाने लगा । प्रचलित ध्रुपदो में प्रायः ये ही चार पाये जाते हैं । अनेक ध्रुपदों में स्थाई और अन्तरा ये ही दो भाग होते है ।(2)

---

1. पटेल, चिंतन / उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत ना अप्रचलित रागोंनुं अध्ययन / महा शोधनिबंध / ओगष्ट – 2010 / पृ. 34
2. कौर, भगवंत / परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 128

1.5.5 ख्याल गायन शैली का उद्भव, विकास एवं विवरण

अक्षर परब्रह्म परमात्मा की अनुभूति के लिये संगीत साधना से दूसरा कोई उत्तम माध्यम नहीं है । क्योंकि भारतीय संस्कृति की उपासना पद्धतियों से लेकर कर्मकान्ड तक सर्वत्र स्वर संशोधन अनिवार्य है, वेदों के प्रत्येक ऋचाओं में मंत्र आदि के उच्चारण में ताल, लय, स्वर एवं गति निर्धारित है । कोलाहल और समस्याओं से भरे हुए इस संसार में अगर कोई वरदान परमात्मा ने मनुष्य को प्रत्यक्षरूप से दिया है तो वो संगीत है ।

स्वर साधना के द्वारा योगी ध्यानस्थ अवस्था में तल्लीन हो जाता है । अनेक योगीयों, महर्षियों का चिंतन–मनन द्वारा शास्त्रीय संगीत की पद्धतियों का स्वर्ण स्तम्भ तैयार हुआ है इसी कारण शास्त्रीय संगीत को दुर्गामित, स्थायित्व, सांस्कृत्व वैदित्व और उसके द्वारा आन्नद तत्त्व की परम प्राप्ती हुई है । भारतीय संगीत का उद्देश्य परम सत्य की प्राप्ति एवं अलौकिक आध्यात्मिक आनंद के रूप में देखा जाता है । संगीत के स्वरूपों में समय–समय पर अनेक परिवर्तन आते गए क्योंकि भारतीय संगीत की अनेक धाराएँ वेद–मन्त्रों से लेकर जाति, गीति, प्रबन्ध, ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा, तराना, त्रिवट, ग़ज़ल, भजन इत्यादि में विभाजित है । इन गायकियों के विकास क्रम में स्थल, समय, परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परिस्थितियों का परिवर्तनशील प्रभाव रहा है जिसके कारण संगीत में भी उनका असर देखने को मिला है फिर भी भारतीय संगीत को परमतत्त्व को प्राप्त करने की धारा नहीं बदली है । इसी कारण से भारतीय संगीत में अनेकता में एकता का दर्शन होता है । विश्व के किसी भी संगीत को ले लीजिए यह सम्यता भारतीय संगीत के अलावा कहीं नहीं दिखेगी इसीलिए भारतीय संस्कृति का मूलाधार स्तम्भ संगीत को माना गया है ।

ख्याल गायन आधुनिक युग में विशेष रूप से लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है क्योंकि ख्याल गायन का साहित्य जन साधारण को सामान्य रूप से प्रभावित करता है । संगीतज्ञों एवं कवियों के द्वारा रचित बंदिशो में रस, ताल एवं वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति तथा गायक स्वर विस्तार का सहारा लेकर गायन को प्रभावशाली बना देता है । ख्याल गायन में कलाकार अपनी कल्पना, कलात्मक प्रतिभा और इस भाव के द्वारा अपनी गायकी को श्रोताओं के सन्नमुख प्रस्तुत करता है । इस गायकी में

स्वर द्वारा मींड, गमक, कण, मुर्की, आन्दोलन, खटका, कम्पन आदी की सहायता से गायकी को प्रभावशाली एवं भावपूर्ण कर के गायक स्वयं तो आनंदित होते हैं और श्रोताओं को भी आनंदित कर देते हैं ।

रसशास्त्र की दृष्टि से ख्याल शैली में एक तरफ करूण रस, श्रृंगार रस जैसे कोमल रसों की अभिव्यक्ति है तो दूसरी तरफ वीर रस जैसे कठोर एवं शान्त रस जैसे गंभीर रसो की अभिव्यक्ति करती है । थाट गायनशैली स्वर प्रधान गायन होने के कारण गंभीर एवं चंचल प्रकृति की है ख्याल शैली में प्रयुक्त होनेवाला आलाप, तान, बोलतान, भाव आदि से गायक अपनी कल्पना शक्ति के साथ गायन को प्रभावशाली बना देता है ।[(1)]

शब्दकोशों के अध्ययन से मालुम होता है कि ख्याल अर्थात् विचार, ध्यान, कल्पना एवं एकाग्रता, अनुभूति, स्मृति आदि है । सूक्ष्मरूप से हरेक शब्द का अध्ययन किया जाय तो हरेक व्यक्ति अपनी कल्पनाशक्ति का वाहक रहता है । किसी कला के लिए कल्पना शक्ति का विशेष महत्व है चाहे वह साहित्य कला, संगीत कला, चित्रकला, शिल्पकला, स्थापत्यकला अभिनय कला हो हरेक कला में एन–केन प्रकारेण वैचारिक कल्पना शक्ति का स्त्रोत अविरत, अखंडित से एक चक्र की तरह चलता रहता है कल्पना से ही मानव मस्तिष्क में संशोधन प्रवृत्तियाँ निरंतर चलती रहती है । एवम् नवयुग की स्थापना होती रहती है । कल्पनाशक्ति ज्ञान पादुर्भाव का स्रोत है ।

प्रतिभा और कल्पना मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है कल्पना से प्राप्त अनुभव ज्ञानात्मक और भूतकालीन अनुवभों से संबंधित है अतित के अनुभव मानसिक प्रतिभा के रूप में स्मृति पटल पर आने से और साथ में पूर्व ज्ञान धटनाओं के जोर देने से कल्पनाओं का संकलन हो जाता है । कल्पना के नव निर्माण नूतनकला न होतो तो कोई मानवीय संस्कृति एवं प्रणाली न होती इसलिए उपरोक्त सभी वर्गीकरणों का ध्यान ख्याल गायनों में विद्यमान है ।

शोधकर्ताने यह विषयोचित्त शोध किया कि, संगीत में राग का उद्देश्य कल्पना द्वारा रस निर्माण करता है । ख्याल गायन में आकर्षकता को बढ़ाने के लिए कल्पना युक्त राग वैविध्य में

1. पटेल, चिंतन / उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत ना अप्रचलित रागोंनुं अध्ययन / महा शोधनिबंध / ओगष्ट – 2010 / पृ. 79

गायन प्रस्तुत किया जाता है जिसमें कल्पना की प्रचुरता, रचना की आकर्षकता और रसानंद का गहन निर्माण होता है । इस सब का मिश्रण ही ख्याल गायन को चरमोत्कर्ष तक ले जाता है ।

उत्तर भारत में 'ख्याल' शब्द विविध संगीत प्रधान नाट्य और गेय प्रधान विद्याओं में देखने को मिलता है लोक परम्पराओं में गाये जाने वाले विविध प्रकार जैसे कि मोची का ख्याल, तुरा–कलंगी का ख्याल, कुचाँमांगी, नौंटंकि ख्याल, मेवारी ख्याल, बैटक ख्याल, जयपुरी ख्याल, ढ ंगली ख्याल, कथाबांचन ख्याल आदि जिसमें कई प्रकार ब्रज में और कईं प्रकार राजस्थान में गाये जाते हैं । कई ख्याल अभिनयों में, कई नृत्यांग में तो कई गायकी प्रधान हैं । उसमें दगंली जयपुरी कथा वांचन और बैठक ख्याल आदि नाम विद्यमान है ।

ख्याल शब्द के अर्थ पर विचार करते हैं तो ख्याल शब्द का अर्थ विचार (अथवा कल्पना है) और ख्याल शब्द ध्यान का अनुवादन है । राजस्थान में कवि कल्पना अथवा ऐतिहासिक धटना के आधार पर बनाए हुए चीत्रों को "ख्याल" कहते है चंग बजोक गाये जाने वाली गीतों को भी "ख्याल" कहते हैं जिसमें ऐतिहासिक गीतों का वर्णन होता है ।

ख्याल का अर्थ 'ध्यान' गायक के अंतर मन कि भावनाओं के साथ सबंध रखता है जिस तरह से ईश्वर का ध्यान करते हैं उसी तरह से गायक वादक स्वरों का ध्यान करते हैं । तभी स्वरों मे चमक गहराई एवं रागों का शुद्ध गायन उत्पन्न होता है । तत्पश्चात "भावना" शब्द की "ख्याल" के रूप में प्राप्त होता है । गायक के हृदय में जो भी भाव उठते है उसका गायन के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध है क्योंकि हृदय में हो रही भावनाओं को वाणी के द्वारा प्रगट कि जाती है और वाणी का सम्बंध साहित्य एवं गान से है ।

ख्याल शैली का गायन विस्तार आदि, ख्याल की "कल्पना" के अर्थ में विचार, ध्यान, भावना, अनुमान तथा खेल आदि शब्दों से अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखता है । क्योंकि रागों के नियमों एवं संगीत के नियमों को ध्यान में रखते हुए कलाकार अपना ख्याल अर्थात कल्पनाओं को श्रोताओं के सम्मुख सुंदर रूप से प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है ।

सभी गायन शैलियों में ख्याल गायन शैली विनय, नम्रता, शिष्टता तथा लालित्यपूर्ण सौंदर्य के

साथ गंभीर एवं श्रृंगारिक रस के साथ प्रस्तुत होती है । ख्याल गायन शैली में शास्त्रीय नियमों का पालन कर के रागों के लक्षणों के द्वारा एवं गायकों के गुण दोषों के ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किया जाता है ।

ख्याल गायन शैली की उत्पत्ति के संबंध में कई विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किए हैं जो की कुछ इस प्रकार है :

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी के अनुसार इसके पूर्व प्रबंध गान या ध्रुपद गान आदि का प्रचलन था । भारतीय संगी में खुसरों ने कव्वाली न ख्याल गान आरंभ किया ।

डॉ. समर बहादुर सिंह के अनुसार, ''ख्याल के अन्नयक अमीर खुसरो थे । कदाचित् इस रूपक शैली को यह नाम भी संभवत उन्हों ने ही दिया । धीरे-धीरे परंपरागत शैली में थोडा बहुत हेर-फेर हो गया और कालांतर में ख्याल का अपनी विशिष्ट शैली बन गई ।''

डॉ. एस. एन. रातंजनकर के अनुसार द्रुत ख्याल का उद्‌भव कव्वाली में हुआ तथा विलंबित ख्यालों की रचना ध्रुपद के नियमों में शिथिलता देखकर की गई । उनका कहना है कि 'दिल्ली के तीसरे मुहम्मदशाह रंगीले इनका राज्यकाल ई. १७१६ तक माना जाता है । संगीत के बडे प्रेमी थे । उन्हीं के दरबार के दो महान गुणी नायकों ने ध्रुपद के ही नियमों को कुछ शिथिल करके ख्यावल नामक गीतों की रचना की और अपने शिष्यों द्वारा उनका बहुत प्रसार कराया ।

स्वामी प्रज्ञानन्द के अनुसार लोकरूचि की आवश्यकतानुसार ध्रुपद के साथ ख्याल का विकास हुआ । परंतु इसका आविष्कार जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने किया ।

कैप्टन विलियर्ड के अनुसार ख्याल में खैराबाद में बोली जाने वाली भाषा रही तथा उसमें दो भुर्ते थी । इसके आविष्कारक जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की है ।

पं. भातखंडे जी का कहना है कि, ''यह मानना युक्तिसंगत नहीं है कि अमुक व्यक्ति ने ख्याल उत्पन्न करके उसका प्रचार किया । ख्याल की तरह गाना समाज में प्रचलित चला आ रहा होगा परन्तु वह सामान्य न था । फिर सुल्तान हुसैन शर्की ने इस गाने को पसन्द किया । उसने गायकों को प्रोत्साहित किया तथा इसलिए अनका प्रचार अधिक हो गया ।

I maintain the so-called the Khyal style of musical composition is nothing but only a natural development of the Sadharani Giti which used the exquisite features of all the styles. It is this Sadharani Giti with the predominant use of Bhinna in it that became the Khyal...........when Amir Khusrao in the 13th century herd the omate style of Rupakalapti full of so much embellishments he could not think of designating this music of creative imagination better than the word Khyal . Khyal was neither imported from Arabia or Persia.... It will be seen therefore that all the embellishments of Khyal rendering are included in Sthayabhanjaini and Rupak bhanjani or Rupakalapti. Evolution of Khayl (Thakur Jaidev Singh) Article....commemoration volume in honour of Dr. S. N. Ratanjankar.

कव्वाली का संबंध अमीर खुसरो से बताया जाता है । अतः ख्याल का संबंध पर्याय से अमीर खुसरो से जुड जाता है । परंतु मध्यकालीन ग्रंथकार दामोदर मिश्र 'संगीत दर्पण' में यह मत प्रस्तुत करते हैं कव्वाली के कौल, कलबाना, गजल जकरी आदि गीतों की रचना सलागसूड प्रबंधों के आधार पर की गई । उनके अनुसार कौल, गजल, जकरी इन यावनी भाषा से युक्त गीतों में धूव, झम्पादि तालों का (सालगसूड) प्रयोग किया जाता है ।जकरी में उद्‌गाहादि अवयवों में फारसी भाषा का प्रयोग करके रचना की जाती है ।

मध्यकाल में ''रूपकालप्ति'' गायन ने ''ख्याल'' गायकों को स्वरों का स्वतंत्र विस्तार और ख्याल के बोलों का विस्तार प्रदान किया है । श्री विनय चन्द्र मौदगल्य के अनुसार ख्याल–गायन रूपकालप्ति का ही विकसित रूप है : "Khyal of Hindustani music is considered parallel development of Rupakalapti." ''ख्याल'' का आविष्कार किसने किया इस पर भिन्न–भिन्न विचार हैं । आधुनिक संगीत विद्वानों का एक वर्ग कव्वाल वाणी के ख्यालिये अपनी परम्परा में ''अमीर खुसरो'' को इस गायकी का जन्मदाता मानते है तो दूसरा वर्ग इन्हें केवल ''ख्याल–गीतों'' का रचयिता मानता है । तीसरे वर्ग का मत है कि 15वीं शताब्दी में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की ने ''बड़े ख्याल'' या ''कलावन्ती ख्याल'' उत्पन्न किये । शरकिया के शासकों में यह आखिरी–बादशाह तथा संगीत–कला के उस्ताद थे । चौथा वर्ग ''मौहम्मद शाह रंगीले'' के प्रसिद्ध दरबारी गायक नियामत खाँ को ही ''ख्याल'' का निर्माता मानते हैं । लेकिन अन्य बातो से स्पष्ट होता है कि ख्याल गायन का जन्मदाता अमीर खुशरो नहीं है वह शायद कव्वली के साथ जुडे है ।

उमेश जोशी ने अपनी पुस्तक ''उत्तर भारतीय संगीत का इतिहास'' में लिखा है– ''15वीं शताब्दी में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की संगीत कला के अत्यन्त प्रेमी थे । इन्होंने ख्याल–गायकी का आविष्कार किया तथा अनेक नवीन रागों की रचना की ।''

डॉ. उमा मिश्रने भी लिखा है, ''हिन्दी साहित्य में जिस प्रकार खड़ी बोली का सूत्रपात अमीर खुसरो के युग में ही हो गया था और वे ही इसके प्रथम आचार्य थे, उसी प्रकार ख्याल गायकी के प्रथम गुरू होने का गौरव भी उन्हीं को प्राप्त है । आगे चलकर जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की ने इस शैली का परिष्कार किया ।''

श्री नियामत खाँ (सदारंग) को इस गायकी का निर्माता मानते हुए गोस्वामी कहते हैं कि मुगल के अकबरी दरबार में तानसेन से पूर्व कव्वालों, कलावंतों को दरबार में तथा जनक्षेत्र में एक–सा आदर एवं महत्त्व प्राप्त था । किन्तु जब ध्रुपद ने दरबार में अत्यधिक प्राथमिकता प्राप्त की तो कव्वाल और कलावन्तों को क्षति पहुँची । परन्तु धीरे–धीरे ख्याल विकसित होने लगा और सदारंग ने उसे अपनी विलक्षण कल्पना–शक्ति से उसे उज्ज्वल, पृथक एवं सुन्दर रूप दिया । उसकी कमियों को पूरा किया और विस्तृत क्षेत्र तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण कर दिया ताकि वह ''ध्रुपद'' का प्रतिद्वन्दी बनकर उसे पछाड़ सके ।

सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक ''वर्नाल''ने अपनी पुस्तक ''सर्वे ऑफ इण्डियन म्युजिक'' में लिखा है–''मोहम्मद शाह रंगीले के समय में सदारंग और अदारंग ने ख्यालों के निर्माण का अद्वितीय कार्य किया ।''

प्रोफेसर बी. आर. देवधर ने भी 'सदारंग' को ख्याल–निर्माता मानते हुए कहा है– ''पहले–पहले ख्याल–रचना अमीर खुसरों ने (ई. स. 1251 से 1325) की, मगर उस वक्त वह लोकप्रिय नहीं हो सकी । उसके बाद सुल्तान हुसैन शर्की, बाजबहादुर, चंचल सेन, चाँद खाँ तथा सूरज खाँ ने इसको दिलचस्प बनाने की कोशिश की मगर वे भी कामयाब नहीं हुए नियामत खाँ इन कोशिशों से अच्छा वाकिफ था और इसी तरफ कोशिश करके नई शायरी उसने शुरू की ।''[1]

1. कौर, भगवंत / परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 141

विषयोचित्त अध्ययन से शोधकर्ता को ज्ञात होता है कि, गत 150 वर्षो में ''ख्याल'' गायन का जो प्रचार हुआ है, वह सदारंग–अदारंग के शिष्यानुशिष्यों ने किया है, ऐसा माना जाता है । ग्वालियर के प्रसिद्ध ''ख्याल'' गायक हद्‌दू खाँ, हस्सूखाँ, नत्थू खाँ, इनके पूर्वज नत्थनपीर बख्श भी अपनी गुरू परम्परा ''सदारंग'' तक पहुँचाते हैं ।

इस प्रकार ''सदारंग'' को ही ख्याल का निर्माता माना जाता है । वास्तव में ''ख्याल'' का उत्पत्तिकर्त्ता सदारंग और अदारंग को ही माना जाना चाहिये । क्योंकि आजकल भी इनके द्वारा रचित ख्यालों का विशेष प्रचार है ।

ख्याल अंग में शब्द से अधिक स्वर का महत्त्व है । स्वर–वैचित्र्य से ही इस अंग की गायकी को सजाया जाता है तथा इस गायकी को रसात्मक एवं आनंददायक बनाया जाता है । शब्द नई–नई स्वर समूहों को संगठित एवं स्वर बढत में सहायक होती है । इस अंग के ख्याल, ताराना, चतुरंग त्रिवट इत्यादि गायकी प्रचार में है ।

राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा या कल्पना से विविध आलाप–तानों का विस्तार करते हुए एकताल, त्रिताल, झूमरा, आड़ाचौताल इत्यादि तालों में गाते हैं । ख्यालों के गीतों में श्रृंगार–रस का प्रयोग अधिक पाया जाता हैं । ख्याल की गायकी में जलद तान, गिटकरी इत्यादि का प्रयोग शोभा देता है और स्वर–वैचित्र्य तथा चमत्कार पैदा करने के लिए ख्यालों में तरह–तरह की तानें ली जाती हैं । ख्याल–गायन में ध्रुवपद–जैसी गंभीरता और भक्ति–रस की शुद्धता नहीं पाई जाती । ख्याल दो प्रकार के होते हैं –(१) जो विलंबित लय में गाए जाते हैं, उनहें बहुधा 'बड़ा ख्याल' कहते हैं और (२) जो द्रुत लय में गाए जाते हैं, उन्हें छोटे ख्याल' कहते हैं । गायक जब ख्याल गाना आरम्भ करता है, तो पहले बिलंबित लय में बड़ा ख्याल गाता है, जिसे प्राय: विलंबित एकताल, तीनताल, झूमरा आड़ा चौताल इत्यादि में गाया जाता हैं । फिर इसके बाद ही छोटा ख्याल मध्य या द्रुत लय में आरम्भ कर देता हैं, जिसे प्राय: त्रिताल अथवा द्रुत एक ताल में गाया जाता है । छोटे–बड़े ख्याल जब गायक एक स्थान पर एक समय गाता है, तो ये दोनों ही प्राय: किसी एक ही राग में होते हैं, कितु बोल या कविता, दोनों खयालों की अलग–अलग होती है ।

ख्याल गायन के अंतर्गत राग के छोटे–छोटे स्वर–समुदाय के द्वारा बोलों की बढत की जाती है । इस गायकी को अलंकारी तान, बोल तानें, शुद्ध एवं सरल तानों से सजाया जाता है । पुकार, छूट, घसीट, मीड, कण, खटका, मुर्की आदि से राग का सौंदर्यवर्द्धन किया जाता है ।

ख्याल में स्वरों की सफाई और गले की तैयारी पर विशेष बल दिया जाता हैं, इसमें गमक का प्रयोग, जो ध्रुवपद धमार का महत्वपूर्ण अंग हैं इसका कम प्रयोग किया जाता हैं । इस गायन शैली को स्वर प्रधान गायन शैली बताया जाता हैं । इस गायन शैली की एक और विशेषता जो कम समय में श्रोताओं को ज्यादा से ज्यादा आन्नद प्रदान करता हैं । इसमें स्वर सोंदर्य पर विशेष ध्यान दिया जाता हैं तथा श्रृगांर रस इसकी प्रधानता होती हैं । ख्याल गायकी निरन्तर लोकप्रिय होकर संगीत समाज में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित है ।

1.5.6 ख्याल अंग में प्रयुक्त ताल

इस अंग में तबले से गायन में संगत की जाती है, इसलिए ताल के बोल तबले के अनुकूल होते हैं ।

(१) झूमरा ताल (मात्रा–१४)

मात्रा -	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
बोल –	धिं	ऽधा	तिरकिट	धिं	धि	धागे	तिरकिट	तिं	ऽता	तिरकिट	धिं	धिं	धागे	तिरकिट
ताल –	x		2				0			3				

(२) तिलवाडा (मात्रा १६)

मात्रा –	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल –	धा	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं
ताली–	x				2				0			3				

(३) एकताल (मात्रा–१२)

मात्रा –	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल –	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धागे	तिरकिट	धि	ना
ताली –	x		0		2		0		3		4	

(४) अड़ाचारताल (मात्रा–१४)

मात्रा –	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
बोल –	धिं	तिरकिट	धिं	ना	तू	ना	क	ता	तिरकिट	धिं	ना	धिं	धिं	ना
ताली –	x		2		0		3		0		4		0	

(५) त्रिताल (मात्रा–१६)

मात्रा –	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल –	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	ति	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
ताली –	x				2				0				3			

(६) रूपक (मात्रा–७)

मात्रा –	1	2	3	4	5	6	7
बोल –	तीं	तीं	ना	धीं	ना	धीं	ना
ताल –	0			1		2	

(७) झपताल (मात्रा–१०)

मात्रा –	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
बोल –	धिं	ना	धिं	धिं	ना	तिं	ना	धिं	धिं	ना
ताली –	x		2		0			3		

1.5.7 तराना

तराना गायन–शैली की प्रकृति चंचल होती है । यह मध्यलय और द्रुतलय में गायी जाती है । इनमें तनन, तदानी, देरेना, दिम आदि शब्दों को लेकर गीत की रचना की जाती है । यह नाद सौंदर्य उत्पन्न करनेवाली गायन शैली है । इस गायन शैली के अतिरिक्त आधुनिक प्रबंध के अंतर्गत त्रिवट, चतुरंग, रागमाला, लक्षणगीत, भजन, गजल आदि अनेक शास्त्रीय सुगम गायन–शैलियों की गणना की जाती है ।

तराना ख्याल अंग की गायकी है, जिसमें गीत के बोल ऐसे होते हैं, जिसका कोई अर्थ नहीं होता है । जैसे – ता, ना, दा, रे, तदारे, ओदानी, दीम, तनोम इत्यादि । तराने में भी स्थाई और

अंतरा ये दो भाग होते हैं । तानों, लयबाँट, बोल बाँट आदि का प्रयोग होता है । यह माना जाता है कि अमीर खुसरो जब भारत आये तो वह यहाँ के संस्कृत भाषा में निबद्ध गीत को नहीं समझते थे । वे अरबी भाषा के विद्वान थे और संगीत का शौक रखते थे तो उन्होंने निरर्थक शब्द गढकर तरह–तरह के हिन्दुस्तानी राग गाये । ये निरर्थक शब्द ही 'तराना' नाम से प्रसिद्ध हुए । इस गायकी में राग ताल, लय का ही आनंद है, शब्दों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया । तराना गायकी मध्यकालीन संगीतज्ञों की देन है । तराना में बोलबाँट द्रुतलय में किया जाता है । द्रुतलय में दिर–दिर आदिशब्द तंत्रवाद्य के झाला की याद दिलाती है । बहुत से संगीतज्ञ तराना में फारसी का शेर पढते हैं । कभी–कभी इस गायकी में पखवाज या तबले के बोल गाये जाते है ।

तराना सभी रागों में तथा ख्याल के सभी तालों में गाया जाता हैं मध्यलय के तराने की गती धीरे धीरे बढ़ाई जाती हैं और अधिकतम गती में पहूँचकर उसे समाप्त करते हैं । तराने का मुख्य उद्देश्य तैयारी लयकारी और उच्चारण से हैं । द्रुत लय के तराना गाने से वाणी में सफाई आती हैं । तराना छेटे ख्याल के बाद गाए जाते हैं तराना की गायन शैली ख्याल के समान होती हैं । स्व. उस्ताद अमीर खाँ के मतानुसार तराने के शब्दों का भी अर्थ होता हैं उनसे मतानुसार तराना में अरबी फारसी के शब्द होते हैं जिसमें 'बन्दा खुदा' से प्रार्थना करता हैं ।

1.5.8 चतुरंग

ख्याल, ताराना सरगम एवं त्रिवट के सम्मिलित रूप को चतुरंग कहते हैं। यह गायकी मध्यकालीन संगीतज्ञों की देन है । ख्याल अंग में गीत के शब्द स्थाई होते हैं, अंतरे में तराना के शब्द होते हैं, संचारी या दूसरे अंतरे में सरगम एवं त्रिवट में पखावज के बोलों की एक परण होती है । यह ख्याल की तरह गायी जाती है, किन्तु इसमें तानों का प्रयोग ख्याल की अपेक्षा कम होता है ।

1.5.9 लक्षण गीत

कोई गीत जब किसी राग में गाया जाता है और उस गीत के शब्दों में उस राग के वादी–संवादी या वर्जित–स्वरों का वर्णन किया गया हो तो उसे 'लक्षण–गीत' कहते हैं । इस गीत से राग संबंधी अनेक बातें सरलतापूर्वक याद हो जाती है । यह गीत ध्रुपद अंग से गायी जाती है ।

आजकल यह ख्याल अंग से ही अधिक प्रचलित है ।ख्याल अंग से सरगम गीत, रागमाला इत्यादि भी गायी जाती है । सरगम गीत में केवल राग की स्वरें तालबद्ध कर गाई जाती है । रागमाला के प्रयुक्त बंदिश में राग का नाम रहता है, राग के नाम आने पर उसी राग में वह पंक्ति निबद्ध रहती है । तालमालिका में विभिन्न पंक्ति विभिन्न ताल में निबद्ध रहती है । ख्याल अंग से शब्द से स्वर का अधिक महत्त्व होता है । एक-एक स्वर के बढत द्वारा राग की बढत की जाती है । स्वर वैचित्र्य, माधुर्य, कोमल पद, तान बोलतान आदि के कारण यह वर्तमान में शास्त्रीय संगीत की शैली है ।[(1)]

1.5.10 ठुमरी

भारत का शास्त्रीय-संगीत धर्म तथा राज्य संरक्षण के दो चक्रों पर ही धूमता रहा है । दोनों की रूढ़ियों ने जब संगीत को भी क्रमशः रूढ़िगत बन्धनों में जकड़ना प्रारंभ किया तो प्रतिक्रिया स्वरूप ठुमरी गायन का जन्म हुआ । जन्मतः लोकतंत्र पर आधारित होते हुए भी ठुमरी की रसानुभूति ने उसे सामन्तवादी परम्पराओं के बीच ला मिलाया ।

विशभ्भर नाथ भट्ट का कथन है-''ठुमरी की उत्पत्ति का रहस्या अभी तक प्रायः अज्ञात सा ही है । यूँ कहा जाता है कि अवध के नवाबों के दरबार में ठुमरी का उद्‌भव हुआ था । परन्तु उक्त दरबार में जो ठुमरी गाई जाती थी उसका स्वरूप इतना प्रौढ़ था कि उसके आधार पर ये कदापि नहीं कहा जा सकता कि उस समय में ठुमरी का नवीन परिपाटी प्रचलित हुई । यह जनता में बहुत पहले से चली आ रही थी । यह बात दूसरी है कि इस परिपाटी को इससे पहले राजदरबार में गाये जाने का सौभाग्य नहीं मिला था । अवध ने नवाबी दरबार में जनता की इसी पूर्व-प्रचलित परिपाटी को स्थान मिला ।''

ठुमरी का जन्म स्थान लखनऊ मानते हैं । अवध के नवाब वाजिद अली शाह अनेक कलाओं के प्रोत्साहित करने के लिए विख्यात हैं । उन्होंने ठुमरी को महत्त्व दिया । कुछ लोगों का मत है कि यह ठुमरी-गायकी के रचयिता भी हैं ।

---

1. कौर, भगवंत / परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत / पृ. 145

''संगीतसार'' नामक ग्रन्थ में यह कहा गया है कि ठुमरी की उत्पत्ति शौरी मियाँ से हुई । यह नहीं कहा जा सकता कि यह कथन किस सीमा तक विश्वसनीय है । तथापि यह बात निश्चित है कि भारत में ठुमरी नामक एक प्रकार का गाना प्रचलित है तथा भिन्न-भिन्न रागों में गाया जाता है ।

शोधकर्ता ने शोध के दौरान यह माहिती भी एकत्रित कि है और यह जानकारी प्राप्त कि है जैसे कि, ठुमरी कब, कहाँ और किस वातावरण में उत्पन्न हुई तथा उसका किस प्रकार विकास हुआ, इस विषय में कई मते हैं। ''प्राचीन काल में एक छालिका नामक शैली थी, जिसमें अभिनय तथा गान की प्रधानता थी । कालिदास के मालविकाग्निमित्र नामक नाटक में मालविका द्वारा छालिका का बड़ा ही सुंदर वर्णन किया गया हैं । ठुमरी इसका ही परिवर्तित रूप मानी जाती हैं।'' अंतर इतना है कि पहले आंगिक व वाचिक, दोनों अभिनय होते थे, किंतु अब आंगिक अभिनय बंद हो गया है, केवल वाचिक अभिनय रह गया है अर्थात् केवल स्वरों के द्वारा गीत के बोल के भावों को अभिव्यक्त किया जाता हैं।

दूसरे मत के अनुसार, राजा मानसिंह तोमर ने ठुमरी को जन्म दिया। कहा जाता हैं कि एक दिन वे भैरवी गा रहे थे । अनायास ही उनसे एक विवादी स्वर लग गया जो कि बड़ा अच्छा लगा तो उन्होंने और भी कई विवादी स्वरों का प्रयोग किया । इससे जो भैरवी का रूप बना, उसका नाम उन्होंने 'तोमरी' रखा जो बिगड़कर ठुमरी हो गया ।

कुछ लोगों का कहना हैं कि ठुमरी का जन्म उन लोकगीतों से हुआ हैं जो कि नृत्य के साथ गाए जाते थे। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ठुमरी 'ठुमक' शब्द से निकली हैं, जिसका अर्थ हैं 'सुंदर पदक्षेप'। इससे यह प्रतीत होता है कि ठुमरी और नृत्य का घनिष्ठ संबंध रहा होगा । ठुमरी के गीतों के भावों को नृत्य में अंग-संचालन के द्वारा व्यक्त किया जाता था, परंतु आजकल गीतो के भावों को स्वरों के द्वारा स्पष्ट किया जाता हैं। इस प्रकार यह धारणा कुछ अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती हैं । एक अन्य विचारधारा के अनुसार, ठुमरी खयाल से संबंधित हैं । 19-वीं सदी के आरंभ में अवध के नवाब आसफुद्दौला के दरबार में गुलाम रसूल नामक गायक थे । गुलाम नबी शोरी इन्हीं के पुत्र थे और शोरी मियाँ ने अपने पिता से ख्याल की शिक्षा ग्रहण की थी । उस समय भी जटिल और उलझी हुई तानों के साथ द्रुत खयाल गाया जाता था तथा गीत के शब्दों के भावों पर कम ध्यान दिया जाता

था । शोरी मियाँ को यह अच्छा नहीं लगता था, हो सकता है कि उनका गला इस गायकी के उपयुक्त न रहा हो, किसी हलकी शैली के योग्य रहा हो । इसीलिए उन्होंने खयाल की जटिलता को समाप्त कर शब्दों को प्रधानता देकर एक नई शैली को जन्म दिया, जिसका नाम कालांतर में 'ठुमरी' पड़ा ।

ठुमरी की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विचार मिलते हैं, किंतु पूर्ण रूप से क्या सत्य हैं, यह बताना कठिन जान पड़ता है । लेकिन ठुमरी के रूप, आकार आदि को देखने से तो ऐसा लगता हैं कि खयाल-गायन में कुछ दुरूहता आ जाने के कारण और शास्त्रीय गायन में एक सरल शैली को विकसित करने के लिए शोरी मियाँ ने ठुमरी को जन्म दिया जो कि बाद में लोकप्रिय हो गई ।

टप्पा, ठुमरी दोनों भाव प्रधान गायन शैलियाँ हैं । टप्पा, पंजाबी या सितारखानी ताल में गायी जाती है । टप्पा की रचना तान के स्वरों में की जाती है । दोनों गायन की शैलियों में खटका, मुर्कियों, बोलबनाव की प्रधानता होती है । टप्पा में विशेषकर दानेदार तानों का प्रयोग किया जाता है उपर्युक्त विवरण से ठुमरी के विकास एवं उत्पत्ति से संबंधित बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती हैं । ठुमरी का जन्म अवध के नवाबों के दरबार में हुआ ।[1]

1. राठोड, भारती / शास्त्रीय संगीत की मधुरिमा : ठुमरी / पृ. 12